

under the rules. I understand that you are not satisfied with the way it was disposed of. But there are other ways open to you.

SHRI SRINIBAS MISRA : If the President says to-day that he is not a citizen of India, that matter is before the House. It concerns the very existence of the State.

SHRI A. S. SAIGAL (Bilaspur) : It is not a point of order. As regards Rashtrapati, he had kept that dignity. (*Interruptions*)

MR. DEPUTY SPEAKER : I have understood your point. Please don't use Rashtrapati's name. I suppose you are citing a hypothetical example. If such a thing happens, adjournment motion is there. Some other means can be adopted but not a point of order.

SHRI SRINIBAS MISRA : The very existence of this House is in question. If you don't appreciate my point, you may rule it out. Here by the Proclamation the President said this :

"I assume to myself as the President of India all functions of the Government of the said State and all powers vested in or exercisable by the Governor of that State...."

The Governor has no constitutional power. It is now vested in the President. Now the Governor is acting under Art. 163 by appointing Advisers and distributing portfolios. How can he do that ? It must be done in the name of the President and by the President.

SHRIMATI ILA PALCHOUDHURI : I wanted to raise in the House to-day that the distribution of Gandhian literature has been stopped in the whole of West Bengal due to Naxalites having burnt Gandhian literature everywhere. This is very dangerous. In spite of President's rule being there, nothing has been done to restore the distribution of Gandhian literature. I have written you a letter also in this regard.

MR. DEPUTY SPEAKER : I would welcome a letter from you any time, but not in this way. I think you should have given a call attention notice on the matter.

SHRIMATI ILA PALCHOUDHURI : But nothing has been taken notice of. So I wanted to raise it in the House.

SHRI JYOTIRMOY BASU : (Diamond Harbour) : I gave a call attention motion on the atrocities committed by the Cambodian Junta on the Vietnamese civilians.

MR. DEPUTY SPEAKER : Have you given a notice ?

SHRI JYOTIRMOY BASU : Yes, Sir.

MR. DEPUTY SPEAKER : Then, it will be considered.

SHRI JYOTIRMOY BASU : You may ask the External Affairs Minister to make a statement.

MR. DEPUTY SPEAKER : Shri G. C. Dixit to continue his speech.

DEMANDS FOR GRANTS, 1970-71—Contd.

MINISTRY OF EDUCATION AND YOUTH SERVICES  
—Contd.

श्री गं० च० दीक्षित (खंडवा) : उपाध्यक्ष महोदय, जैसा मैंने पहले कहा था कि शासन व्यवस्था चलाने के लिए, जबकि हमने भारत में प्रजातन्त्रिक प्रणाली अपना ली है, तब शासन का यह परम कर्तव्य हो जाता है कि वह इस बात को देखे कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति का विकास हो रहा है या नहीं। और यह देखना तभी जायज होगा जबकि इस बात को देखा जायगा कि शासन ने देश में शिक्षा की उचित व्यवस्था कर दी है या नहीं। लेकिन आज हम क्या देख रहे हैं ? क्या प्रजातन्त्र की रक्षा के लिए शिक्षा की उचित व्यवस्था की गई है ? क्या इस समय सामाजिक न्याय और अन्याय को पहचानने की ताकत प्रत्येक व्यक्ति में पैदा हो गई है ? ये बातें आज शासन नहीं देख रहा है। हमारी पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान में हमने देखा है कि शासन ने जितना धन बौद्धिक पूंजी के विकास की ओर लगाया है उतना धन

[श्री गं० च० दीक्षित]

मानवीय पूंजी के विकास की ओर नहीं लगाया है। हमारे आर्थिक विकास की जो योजनाएँ सन् 1950 में आरम्भ हुई उस समय हमने देखा कि शासन ने शिक्षा के लिए जो खर्च किया वह राष्ट्रीय आय का केवल दशमलव 5 प्रतिशत था और पाँचवें दशक के अंत में वह बढ़ कर 1.7 प्रतिशत हुआ। आज की परिस्थिति और भी विचित्र है। जैसा कि मन्त्री महोदय ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि प्रत्येक वर्ष से कम इस समय शिक्षा के स्तर को बढ़ावा देने के लिये रकम दी गई है। मैं तो यह समझता हूँ कि जिस प्रकार किसी कुशल मल्लाह से कहा जाये कि तू तूफानग्रस्त समुद्र में जिस समय उममें उताल तरंगे उठ रही हों एक जर्जरित जहाज बिना किसी साज सज्जा के लेकर किनारे लग जा उसी प्रकार आज केन्द्रीय शिक्षा मंत्री से शिक्षा के जहाज को बिना घनराशि के पार लगाने को कहा जा रहा है। इसमें कोई शक नहीं कि हमारा शिक्षा मंत्रालय उस व्यक्ति के सुपुर्द किया गया है जिसने अपने जीवन का बहुमूल्य काल शिक्षा के क्षेत्र में बिताया है और जिसने शिक्षा में एक क्रान्ति लायी है। ऐसे व्यक्ति से कहा जा रहा है कि शिक्षा के स्तर में उस समय उन्नति करो जब कि चारों तरफ अशान्ति की ज्वालाएँ जल रही हैं। छात्रों की अशान्ति को शून्य के निवेश से शान्त करना सम्भव नहीं है। यह तभी सम्भव होगा जबकि आर्थिक विकास के साथ साथ शिक्षा के लिए भी पर्याप्त पैसा दिया जावेगा परन्तु वास्तव में हो यह रहा है कि हमारी सरकार शिक्षा के लिए जो पैसा दे रही है वह कम दे रही है। आज अपने देश में जब हम इतर देशों से तुलना करते हैं तो साक्षरता का बिल्कुल अभाव पाते हैं। सन 1950 में हमारे देश में साक्षरता प्रतिशत 16.6 थी, सन् 1961 में वह बढ़कर 23.7 हुई और 1969 में वह बढ़कर 33 प्रतिशत हुई। जब हमारे देश में साक्षरता की

यह हालत है तब शासन शिक्षा के क्षेत्र में कम से कम पैसा दे रहा है पर दीगर आर्थिक विकास की योजनाओं को सफलीभूत बनाने के लिए वह ज्यादा से ज्यादा पैसा देता है। ऐसी हालत में हमारी समझ में नहीं आता कि हम प्रजातन्त्र की रक्षा किस प्रकार कर पायेंगे? जनसंख्या के आधार पर सन् 1951 में हमारे देश में निरक्षरता 29.6 करोड़ थी जोकि 1969 में बढ़कर 34.9 करोड़ हो गई। इसमें कोई शक नहीं कि जब हम पहले से तुलना करते हैं तो हमारे यहां साक्षरता का प्रभाव बढ़ा हुआ पाते हैं, साक्षरता बढ़ी है परन्तु जनसंख्या के आधार पर, उसके अनुपात में जब हम तुलना करते हैं तो निरक्षरता ज्यादा बढ़ती हुई पाते हैं। यह निरक्षरता हमारे समाज के लिए अभिशाप है। जब तक यह निरक्षरता हमारे समाज में रहेगी तब तक हमारी जितनी भी योजनाएँ हैं, वह कभी भी सफलीभूत नहीं हो सकती हैं। तुलनात्मक दृष्टि से जब हम अपने देश की इतर देशों से तुलना करते हैं तो मालूम पड़ता है कि हमारे आर्थिक विकास की योजनाएँ यहां पर उतनी सफलीभूत नहीं होतीं जितनी कि इतर देशों की सफलीभूत होती हैं। इसका मूल कारण यह है कि हमारे लोगों के लिए जिन योजनाओं का निर्माण किया जाता है, जो कानून बनाये जाते हैं, जो समस्याएँ निमित्त की जाती हैं उनको समझने की ताकत उनमें नहीं होती। हमने देखा कि 1946 में भूमि सुधार कानून के अन्तर्गत जापान में जब भूमि का वितरण किया गया तो इस में से नौ लोग जापान में ऐसे थे जोकि भूमि सुधार कानूनों को पढ़ सकते थे और समझ सकते थे। लेकिन आज भारत की क्या हालत है? क्या दस में से एक भी आदमी ऐसा है जो कि, उसके हित के लिए जिन कानूनों का निर्माण किया जाता है, उनको वह समझ ले? भले ही दूसरी तरफ आर्थिक विकास की नुमाइशों के लिए हम यह कहते

चले जावें कि हम देश का आर्थिक विकास कर, देश की रक्षा करेंगे परन्तु यह सम्भव बिना शिक्षा के नहीं होगा। स्वतन्त्रता संग्राम के काल से हम यह नारा इस देश में देते चले आ रहे थे कि देश आजाद होने के बाद हम निरक्षरता दूर करेंगे, इस देश में अनिवार्य शिक्षा का प्रादुर्भाव करेंगे। साथ ही साथ हमने यह वचन भी दिया था कि स्वतन्त्रता के बाद देश में बुनियादी तालीम का प्रादुर्भाव करेंगे लेकिन हम देखते क्या हैं ? भले ही महात्मा गांधी को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए बुनियादी तालीम की दुहाई दें या नुमायशी तौर पर प्रदर्शनी करने के लिए भले ही बुनियादी तालीम की दुहाई दें लेकिन शासन की ओर से बुनियादी तालीम के लिए जो सतही काम हुआ है उसको लेकर क्या साहस के साथ कोई कह सकता है कि बुनियादी तालीम में कोई काम हुआ है ? महात्मा गांधी कहा करते थे कि शिक्षा का लक्ष्य तभी पूरा होगा जबकि दस्तकारी के माध्यम से या किसी काम धंधे के माध्यम से बालकों को शिक्षा दी जायेगी। आज बालकों के मानवीय विकास के प्रति हमारा खयाल बिल्कुल नहीं है। हम हर तरह से उनके मस्तिष्क में जानकारी ठूसने का प्रयत्न करते हैं परन्तु जो जानकारी उनको उपलब्ध कराई जाती है क्या वह जानकारी ऐसी होती है जोकि उनके जीवन को पूर्ण सफलतापूर्वक संचालित करने के लिये सहयोग दे ? हम देखते हैं कि जब बालक पाठशालाओं से बाहर निकलते हैं तो निकम्मे हो जाते हैं और निकम्मे होकर किसी प्रकार का काम नहीं कर सकते। तो सबसे पहला काम हमारा यही होना चाहिए कि बुनियादी तालीम काम धंधे के बल पर दें, बालकों की मानवीय शक्ति का विकास करें।

दूसरी बात मुझे पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में कहनी है। हम विश्वविद्यालय का पाठ्यक्रम देखते हैं—हमने समाज-शास्त्र की शिक्षा दी, वाणिज्य शास्त्र की शिक्षा दी, राजनीति की

शिक्षा दी, साहित्य की शिक्षा दी लेकिन कोई ऐसा भी पाठ्यक्रम है जिसके बल पर हम बालकों से यह कहें कि तुम अपना चरित्र उज्ज्वल बनावो, सच्चे मानव बनो ? क्या कोई ऐसा पाठ्यक्रम है जिसके द्वारा हम कहें कि समाज के प्रति तुम्हारा क्या कर्तव्य है ? होना तो यह चाहिए था कि विश्वविद्यालय से निकलने के बाद बालक अपने मस्तिष्क में यह समझने की भावना लेकर चलता कि सही और गलत क्या है और मानवीय उद्देश्य और उच्च परम्परा हमारे देश की क्या है। भारतीय शिक्षा का तो उद्देश्य है : सा विद्या या विमुक्तए। अपने देश की संस्कृति की रक्षा करने के लिए स्वार्थ वृत्ति से ऊपर उठने की हम विद्या दिया करते थे लेकिन आज वह विद्या गायब है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि शिक्षा के क्षेत्र में हमने तरक्की की है, हम निरी बौद्धिकता की तरफ लड़कों को ले गये हैं। आज जब तक विश्वविद्यालय के पुनीत प्रांगण में यह मनोवृत्ति कायम रहेगी कि छात्रों को जो शिक्षा दी जा रही है वह काम धन्धे और नौकरी के लिये दी जा रही है और जब तक यह भावना छात्रों के दिल में जमी रहेगी तब तक विश्वविद्यालय के पुनीत प्रांगण में कभी भी शान्ति कायम नहीं रह सकती।

हमारे पास केवल दो विकल्प हैं। एक यह कि हमारा जो शासन है, वह हमारी शिक्षा का कार्यक्रम अपने हाथ में ले लें और साथ ही काम धन्धे देने का कार्यक्रम भी अपने हाथ में ले लें यह एलान कर दे कि शिक्षा देने का कार्य सरकार के हाथ में है, अर्थात् पूर्ण राष्ट्रीयकरण शिक्षा का कर दिया गया है, और काम धन्धे देने का काम भी सरकार ने अपने हाथों में ले लिया है जैसे कि साम्यवादी देशों में हुआ करता है।

या दूसरा विकल्प यह है कि छात्रों के मस्तिष्क से यह भावना निकाल दी जाये कि

[श्री गं० च० दीक्षित]

जो शिक्षा तुम्हें दी जा रही है वह शिक्षा काम धन्धे के लिये नहीं बल्कि तुम्हारा उच्च चरित्र बनाने के लिये दी जा रही है। जिस दिन इन दोनों विकल्पों में से एक विकल्प को भी सरकार अपना लेगी उसी दिन से विश्वविद्यालयों में शांति स्थापित हो जायेगी।

हमने हिन्दू विश्वविद्यालय का वह दृश्य देखा है जब कि उसकी प्रत्येक ईंट में विश्व-विद्यालय के सम्पूर्ण प्रांगण में स्वर्गीय पंडित मदन मोहन मालवीय के ये शब्द मुखरित हुआ करते थे :

मातृ देवो भव, पितृ देवो भव,  
सत्यात् न प्रमिदितव्यम्।

लेकिन आज उस विश्वविद्यालय में क्या हो रहा है? उसका मूल कारण यह है कि छात्र जब यह देखता है जब उसको यह मालूम पड़ता है कि विश्वविद्यालय के प्रांगण से निकल कर काम धन्धा उसे नहीं मिलेगा तब असंतोष की ज्वाला उसके मन में भड़क उठती है और वह समाज को लाञ्छित करता है। जो समाज उसको काम धन्धा नहीं दे सकता, जो उसके जीवन के 10, 12 साल बरबाद करता है, वह उस समाज को घृणित समाज समझता है और उसको नष्ट करने की प्रेरणा उसमें जाग उठती है। और इसीलिये वह यह चाहता है और उसमें एक असंतोष की ज्वाला भभकती है कि मैं ऐसे समाज के प्रति क्यों निष्ठा करूँ, मैं ऐसे समाज को क्यों जाग्रत करूँ।

इसलिये मैं शासन से अपील करता हूँ कि वह ज्यादा से ज्यादा इस बात को कोशिश करे कि छात्रों को ऐसी शिक्षा दी जाये जो उन्हें उच्च चरित्र बनाने की तरफ प्रेरणा दे जिससे भारत का मुख उज्ज्वल कर सकें।

SHRI K. M. KOUSHIK (Chanda) : In the days of diarchy, Education was a transferred subject. At that time, our popular Ministers in charge of Education were always putting forward the plea that for want of funds, they were unable to eradicate illiteracy and also make primary education compulsory. They said the finances were controlled by Britishers and therefore, they were unable to do it. But if we see the conditions obtaining today even after two decades of independence, the position has not very much changed.

In this connection, I want to give some figures with regard to literacy and illiteracy. Literacy in 1951 was 16.6 per cent as against 24 per cent in 1961. I am glad there was an annual growth rate of 0.7 per cent. The number of illiterates in 1951 was 59 million as against 105 million in 1961—of course, this has to be offset against the increase in population of 2.15 per cent. The number of illiterates in 1951 was 298 millions and in 1961 334 million. The population in 1961 was 439.2 million. This works out to the figure of 3 illiterates out of every 4 of the population. In fact, the conclusion from these figures will be that though there is a literacy growth of 0.7 per cent in the decade 1951—61, though literacy is increasing, the illiterates are also increasing, which is a paradox, which still remains.

This adult illiteracy has serious drawbacks. In the first place, adult franchise, which we have taken as the basis for our parliamentary democracy, and adult illiteracy cannot, to my mind, co-exist because adult franchise necessarily involves the idea that people understand the programmes and ideologies of the different parties and then enter into a certain pattern of voting. Since this is the inherent idea, it is very difficult to understand how the two can go together.

Some 334 millions have exercised their franchise. How? I will give you a small instance. In 1952 in my constituency a Mohammedan gentleman was put up to the Lok Sabha. I met an old Hindu woman returning after voting. When I asked her for whom she had voted, she said that she had voted for the bullocks.

SHRI R. D. BHANDARE (Bombay Central) : That was a wrong question.

SHRI K. M. Koushik : I am giving an illustration to show that people do not understand and, therefore, eradication of illiteracy is necessary. It is not with regard to anything else. Whether it is right or wrong, you are not the judge here.

I asked her further how she voted for a Mohammedan since she was an old Hindu lady who had done a lot of pilgrimages etc. She said she had not voted for a Mohammedan but only for the bullocks. This is the pattern of voting that is going on, and people do not even know the candidates.

Secondly, we have taken up the family planning programme very seriously. It is very necessary, there is no question. We are offering Rs. 20 for man who brings people for sterilisation vasectomy and other things. If adult illiteracy was not there and if people had the capacity to understand things, there would be no necessity for all this. Adult illiteracy has been hampering our family planning programme, and, therefore, the real impact which we expect is not there.

Thirdly, we have got so many social and economic development plans. The illiterate rural population is not, as a matter of fact, able to co-operate and partake in the agricultural and other developmental programmes, and therefore, necessarily there is a wide gap between our targets and our achievements.

The last but the most serious drawback is that the traders, politicians, trade-unionists and subversive elements have been exploiting the adult illiterate population. They have almost become a play field for all these types of people, and because of their illiteracy they are not able to put up a proper defence, they are not able to defend themselves, and they cannot insist on their rights. Therefore, for putting an end to this sort of exploitation and for removing the other drawbacks which I have mentioned, eradication of adult illiteracy is a must. My hon. friend Mr. Reddy spoke on this point yesterday and I do not want to dwell at length. I should say that holding classes during summer for two

or three months through various voluntary organisations with various types of teachers and university students would be one of the methods by which we can transform these adult illiterates into intelligent and, discriminating citizens. I congratulate the Maharashtra Government who have taken up this programme, but unfortunately the follow-up action necessary in all these cases, is not there. Follow-up action is more important than even the summer classes themselves. They have to be supplied with good books, printed in bold types giving them important hints on affairs which concern the rural population. If such books are given and proper inspection and supervision exercised over them, they will be able to keep on what they have acquired in the summer classes. Otherwise, whatever little they learn is forgotten.

The problem of adult illiteracy is aggravated because our failure to make primary education compulsory and free. We want to make primary education compulsory. In some States there is law which makes it compulsory but there is no strict enforcement of that law. In spite of article 45 of the Constitution, we remain where we were, even after two decades. The Centre cannot take shelter under the plea that it is a State subject. If the States do not do it, the Centre will have to make it a concurrent subject and introduce compulsory primary education in every nook and corner of our country. I am astonished that the young Turks who profess themselves to be the saviours of the country and of the poor have not laid emphasis on adult literacy and compulsory primary education as a point in their oft-repeated programme.

SHRI R. D. BHANDARE : No party has done that.

SHRI K. LAKKAPPA (Tumkur) : If illiteracy is removed how would they win elections ?

SHRI K. M. Koushik : I only hope that the so-called young Turks do not believe in the saying : where ignorance is bliss, it is folly to be wise. In any case the hon. Minister should look into this matter and see that education is made a concurrent subject, so that the Centre can do what is to be done for eradication of adult illiteracy and making education compulsory at the primary stage.

[Shri K. M. Koushik]

School education is under the control of Zila Parishads and Panchayat Raj. It has become the playground of the politicians. Postings and transfers are politically motivated. We can see what politics goes on from what is happening in Banaras Hindu University and Aligarh Muslim University. I do not want to dilate on that. Nobody who is working in an educational institution should be allowed to take part in politics as his attention gets divided. He will be spending more time in politics than on his scholastic work. Steps should be taken to see that politics is kept aloof from educational institutions.

Teaching in the primary stages is an art by itself. Six lakhs untrained teachers out of two million are allowed to teach in primary schools. Apart from that, eighty per cent of the schools do multiple teaching where simultaneously several classes are taught. There is no college in our country to train teachers for multiple teaching. I think this system should end.

A word about the CSIR which has come in for a lot of criticism in newspapers and in this House also. One senior professor from the Institute of Atomic Energy Bombay, who has now retired told me that the country has been swindled by the scientists and no useful work is being done. It is very unfortunate to say that. And now, I shall give a quotation from Dr. Sir C. V. Raman. Dr. C. V. Raman observed as follows :

"Shahjehan built the Taj to bury one of his favourite wives. Let us be frank about it. Bhatnagar built the national laboratories to bury scientific instruments. Any defence of CSIR is meaningless. They are trying to defend the indefensible."

This is what Dr. C. V. Raman has said recently. So, this will give you an idea as to how the country has been swindled by the scientists. We thought, so far, only the traders and politicians were swindling, but now the scientists also have joined this swindling gang. I am sorry to say that.

Then, I do not know how the directors of

regional laboratories are giving press interviews. Directors of individual national laboratories call for a press conference. I cannot understand what right they have got in giving press interviews. How can they call these fellows and address them? That is a matter which I would leave to the Minister for being looked into.

Then, I plead for the appointment of a School Commission. Our primary teachers are dissatisfied. Their emoluments are very poor; very meagre. They cannot put in any hard and sincere work. Their service conditions are not good. Even the text-books prescribed smack of nepotism and favouritism. It is not fair. The books are not of the required standard. They also contain a lot of inaccurate information and mis-statement of facts. Therefore, a Commission is very necessary in order to scrutinise and prescribe the conditions of service of the teachers. In this House itself, the question of defective maps has come up several times. Kashmir has been shown not as an integral part of India but outside India. If such maps and if such bad literature, including the voluminous Communist literature, fall into the hands of the young, the result is obvious—indiscipline, violence and the like. (*Interruption*)

श्री रामाबतार शास्त्री (पटना) : अगर लड़के कम्यूनिज्म की किताबें पढ़ेंगे, तो सब मामला ही ठीक हो जाएगा ।

SHRI K. M. KOUSHIK : Shastriji, much can be said about it. Now, about the private institutions. There is a mushroom growth of secondary schools and colleges. If they give just Rs. 100 to a teacher, they will take an acknowledgement for Rs. 150 on the pay-rolls. This sort of fraud is going on. Actually, in one of the schools in my district, the District Inspector sent a report of 25 pages accusing the management of forgery, cheating and all that. It is now seven years and successive Chief Ministers are shielding that man who was running the school. They do not want him to be prosecuted though several complaints about him have been made. Successive Chief Ministers want to shield him because he is a very important man in the Congress, collecting a lot of

votes in the Elections. This is the state of affairs. These institutions do no good to the students and the country, and should not be allowed to continue.

With these words, I leave it to the Minister of Education to see what can be done to improve matters.

SHRI AMRIT NAHATA (Barmer): Mr. Deputy-Speaker, Sir, I want to draw your attention and through you the attention of this House to the state of affairs that obtain in the most pampered child of the Education Minister, namely, the NCERT—National Council of Educational Research and Training. On the 29th January, 1968, a Review Committee had been appointed to go into the work of this Council and to suggest a programme of future development. Within a record time of six months, this Committee submitted its report and that report makes a beautiful reading. This Committee consisted of the most competent and eminent educationists of the country. It was headed by Dr. B. D. Nagchowdhuri.

Sir, it was sometime back that this House was told that the Education Ministry would implement the report of this Committee. I want to tell you that this report has been deliberately thrown to the winds, and its recommendations are not being implemented. This NCERT has an annual budget of Rs. 4 crores. It is a huge affair; more than a lakh of rupees is spent by this Council daily.

This Council runs some colleges known as regional colleges. In these colleges every student is given a stipend of Rs. 70 or 75 per month. These colleges have palatial buildings and they have four-year courses. This Committee has categorically recommended, and I quote from the Report:

"We, therefore, recommend that fresh admissions to the four-year courses in the regional colleges of education should be discontinued with effect from 1969-70 and the resources and facilities thus released should be utilized for research and development of one-year course in service training pro-

grammes, extension services etc. which we have recommended elsewhere."

I will not go into the details, but the most important recommendation of this Reviewing Committee was that the four-year courses in these regional colleges must be terminated. I am told that this recommendation is not being implemented, these four-year courses are being continued, and some regional pressures are being artificially generated to say that the States do not want these colleges to be closed down and all that. I do not know what are the reasons, but the fact remains that one of the most important recommendations of the Reviewing Committee is not being implemented, it is being violated.

Another very important recommendation of this Reviewing Committee was that the National Institute of Education, which is a body working under this Council, should have only four departments. They were to be the Department of Science Education and Science Work, Department of Social Education and Humanities, Department of Primary Education and the Department of Educational Psychology. Here is an office order of the NCERT which says that there will be seven departments. The Reviewing Committee recommends four departments but here the decision is to have seven departments—Department of Educational Psychology, Department of Primary Education, Department of Science Education, Department of Social Sciences, Department of Teacher Education, Department of Teaching Aid and Department of Text-books. This is a blatant violation of the recommendations of this Committee.

Another important recommendation of this Committee was that the NCERT must have a director. I am quoting from the Report:

"We, therefore, recommend that immediate steps should be taken to appoint a full-time Director for the Council. He should be an eminent educationist with teaching or research and administrative experience and should command respect from the academic community and find acceptance in the States on the basis of his competence and status in

[Shri Amrit Nahata]

the field of education. We also recommend that his emoluments and status should be similar to that of a Vice-Chancellor of a Central University or the Director of an Institute of Technology. The procedure for his selection and appointment should also be the same."

I am told that a Director has been appointed for this NCERT. I would like to know from the hon. Education Minister whether the procedure for his selection and appointment has been the same as it obtains in the universities? Has he been selected by a Selection Board at all? And the Director who has been appointed is not an educationist at all. He is a retired Professor of Electrical Engineering and he has to conduct research in education and in school education. I am told, and I do not know how far it is true, that this gentleman who has been appointed as Director comes from Bangalore. Is it a coincidence that he should be from Bangalore? Probably, he was also a class mate of the hon. Minister; I do not know.

THE MINISTER OF EDUCATION AND YOUTH SERVICES (DR. V. K. R. V. RAO): I am rather shocked at his observations.

SHRI AMRIT NAHATA: But the fact remains that he is not an educationist.

This Committee reported that the NCERT must not be a technical wing of the Education Ministry.

"This may be done either by declaring it to be a deemed University under section 3 of the UGC Act or by declaring it by law as an institution of national importance."

I am told that it has been decided that NCERT will continue to be a technical wing of the Education Ministry. Here again one of the most important recommendations of the Reviewing Committee has been flouted.

Another important recommendation was:

"The academic atmosphere in the National Institute of Education is not properly developed because of status conscious-

ness and hierarchical relationships. We recommend that the college staff of the Council should make it their particular responsibility to create an atmosphere where integration between different levels and between different departments is not affected by hierarchical considerations."

At present in every department in the NCERT there is a head, then there is a Professor, then there are field advisers, readers, lecturers, senior research assistants, research assistants, technical assistants and other assistants. Quite a large number of lecturers are there in each department and they do not lecture to anybody. There are in all about 110 readers but only three or four Professors in the National Institute of Education. Even according to the standards laid down by the UGC the ratio between the readers and Professors should be at least 5 : 1; if there are five readers, there should be one Professor. Now there are 110 readers and hardly three or four Professors. There is quite a large number of lecturers, about 80 of them, and they have no work to do.

There is a huge secretarial staff. There is a Secretary, then Under Secretary, Assistant Secretary, Section Officers, Administrative Officers, Superintendents and all that. These administrative people have two telephones on their tables and one at their residence and the academic staff have to behave as if they are the subordinates of these bureaucrats. It is primarily because the NCERT continues to be a wing of the Education Ministry that the same bureaucratic atmosphere prevails there which would prevail in any government Ministry.

Then you would be surprised that in most of the departments there is a large number of lecturers and some readers also but no professors and professors are not being appointed so that some of the readers may act as the heads of these departments.

If you were to go into the achievements of the NCERT you would be grossly disappointed. Except preparing some textbooks, which are shameful plagiarisation of foreign text-books,

almost translation of foreign textbooks, which are not at all suitable for Indian conditions, except preparing these few textbooks nothing has been done. Some good research work was being done but since this Report has been published and has been flouted and violated and not implemented, an atmosphere of utter frustration and dejection prevails in this institution. Some very good research people are being back from where they had come and the rest of the educationists and the academic people do not know what to do.

You would be startled to know that the former Education Minister, Dr. Triguna Sen had a mind to implement this Report. I am told that even a resolution was drafted and that it was okayed by some very eminent educationists of the country. It was lying with the Secretary in the Ministry. The Minister wanted that resolution to be signed by him. For four or five months the Education Secretary sat tight upon that resolution. It was never signed and finally things have come to a pass when that resolution has been shelved or pigeon-holed. All those recommendations have been flouted.

Some officials of the Ministry were in this Committee. Obviously, the intention was that these officials should associate themselves with the findings and studies of this Committee so that later on, they may be facilitated in implementing those recommendations. Those officials did not append any minute of dissent. That naturally meant that they were in agreement with the recommendations of this Committee. And those very officials are trying to throw off these recommendations to the four winds and proceed as if this research institution was a department of the Ministry. They are polluting the entire atmosphere of that institution and the whole academic atmosphere is being vitiated. No research work is being done. No academic people go to the class-room. The primary duty of this institution according to this Committee should have been to concentrate on research about learning, about motivation, about the aptitudes of the students in the schools and later on go down to the primary schools. But in this direction nothing has been done. For example, this Committee says: this

Institute should concentrate on research and examination reform. Nothing is being done. What is being done is: seminars are being organised. There are lecturers in this Institutes who have attended 15 to 20 seminars. They say we just go and sit in those seminars and come back. This is a very expensive experiment which the Ministry has conducted. I would request the Education Minister to implement all the recommendations of this Reviewing Committee in letter and spirit or close down the shop and spare the exchequer four crores of rupees annually.

SHRI M. L. SONDHI (New Delhi): Mr. Deputy Speaker, when this country was engaged in the struggle for freedom it was often reiterated that it was our resolve to release the full potentialities of our people; to release them from the bondage of ignorance and to remove the darkness and confusion which has come upon our land.

Sir, today it is a matter of great regret that we cannot even pose the questions relating to Education in this form and instead we have to ask whether we still retain the goal of modernisation. Are we really tending towards becoming a modern society or are we going backwards when compared with Japan or even countries of South East Asia like Singapore?

Sir, the question which poses itself to us is whether there is room in India for highly trained scientists. The names of Dr. Khurana who had to get his Nobel Prize as an American citizen and the name of Dr. Joseph who had to commit suicide, these two names beckon to us and demand an answer from us. Why don't the scientists want to come back to our country? Why can't they do research in this country? The main reason, if the Minister is honest and candid, is that he has been able to do nothing about bureaucratic environment that persists in our country. It is not that our scientists need comforts, but what annoys the young, active and creative scientist is that they are pushed aside by administrators and bureaucrats who do not understand what modern scientific research entails.

Sir, there is a scientists' pool in this country.

[Shri M. L. Sondhi]

That scientists' pool, I would like to remind Dr. V. K. V. R. Rao, is a whirlpool of despair in which different professionally demoralised persons meet and bemoan their lot. Sir, the specialization which we seek in this country which we thought was our birthright is denied to us and it amazes me also that they know about it. It is not that they are ignorant. I quote the Prime Minister and, I think, she spoke as a Member of the Opposition on this occasion: "Certain tasks cannot be carried out owing to procedural difficulties. There are unnecessary irritations of the bureaucracy at headquarters or the ministries of the Government. We are not getting all the returns possible from our investment in scientific research nor are we utilising the talents of our young people in the best manner."

Sir, these are the Prime Minister's words at the Science Congress at Kharagpur. There are two aspects—one is scientific mentality and the other is darbari mentality which still persists. I quote from Dr. Zaheer who occupied a very high position. I regret the tone, the quality and the temper is darbari—"It was small wonder then that like earlier kings of Europe who patronised first scientific societies in their countries Pandit Jawahar Lal Nehru also chose to remain the President of CSIR till his death." References to kingship in an environment where privy purses are taken away—references to the kings of Europe, those medieval kings about whom you know what a mess they made of Europe at that time, otherwise you know how Europe would have gone ahead—if this is the model before our heads of scientific institutions, you can well imagine what a far cry it is from names like Jagdish Chand Bose, Profulla Chand Ray or even C. V. Raman who were mentioned here. That particular quotation was perhaps not very appropriate. I find a very appropriate quotation from C. V. Raman where he says that the CSIR has usurped the functions of carrying out basic research, which truly belong to the universities, without meeting the technological needs of industry. That is the crux of the matter.

When we talk of the report of the Sarkar

Committee on which there were distinguished Members of this House and want action on it or want full facts about it, what we are concerned with is the grave danger that hangs over national scientific and industrial research. What is unsatisfactory about the Sarkar Committee report—I am referring to the majority report—which is given here is that there is a case of *suppressio veri*. The facts have not been placed before us and it is likely to jeopardise and prevent a genuine and vigorous effort by Parliament to raise the standard of scientific and industrial research in the country about which many Members here and in the other House have shown very great concern. It would seem that the report of the Sarkar Committee, Part I, which has come, has refused to fix responsibility and understand the tragedy of the situation where so much money has been used. We do not grudge more money for scientific research but the benefit that accrues to the nation must concern all of us no matter from which part of India we come.

We want to know from the Minister why the Council of Scientific and Industrial Research has failed to achieve its aims. He circulated to us a document the other day which is a good publicity effort but what we want is the philosophy of research, the imperatives, the guidelines which the Minister has indicated and not a mere set of figures. We want to know from this particular Minister, who had aroused so many hopes in the country when he was appointed the Minister because here was a first-rate educationist, a man with a grand academic past, who had come into this position, whether there has been a wastage of resources or not. I for one, with all respect for him, find no evidence of new thinking; he is a prisoner in the old set-up and perhaps one day he will write his memoirs.

I, therefore, demand that as far as the CSIR is concerned, whatever documents came to their notice or possession should be very clearly brought before this House. They should not be prevented from the scrutiny of this House. If there are irregular appointments made, they must not continue to occupy those positions which they occupy in contravention of sound

principles of scientific administration. It is not a case of dispensing with or disposing of those people. It is mentioned in the minute of dissent, which is very important, that at least there are eight appointments which need very urgent scrutiny. The background has been revealed and the background is a very distressing one. There are also people who have been found guilty by the CBI. In that case the law must take its course and the highest standards of scientific administration must be upheld.

The implementation of Part I is what I am worried about. The report has its recommendations. But when will they see the light of the day as far as action is concerned? Or, will the report remain on the dustladen shelves of the Minister's office room? In the meetings which the Minister has had with the Directors of CSIR, he has urged them not to keep the old hierarchical order but to set up academic councils for laboratories in a semi-university design. What is the result of that exhortation? Has there been an understanding of the situation?

In this context I would refer to the note of dissent to which I drew your attention earlier. When the Minister looks at the note of dissent signed by Members of Parliament—as a matter of fact, the majority of Members of Parliament chose to sign the minute of dissent rather than side with the other group who authorised the report—can he still retain his self-complacency? The entire basis on which the Minister built his case that all is well and there are only minor defects, has been demolished. The minute of dissent has been admired in the press and by intellectual circles. Parliament must not be satisfied by the tranquillisers given by the Minister in the form of half measures. We must resolve in this Parliament to launch a fight to root out vested interests, no matter where they be. I will give a warning that the Government will be remiss if they lower the conduct in the highest scientific establishment of our country. It will be a dreadful commentary on our affairs in the eyes of the world. These were the chain of national laboratories. Mr. Nehru called them the temples of modern India. But today they are

the junk yards of Indian bureaucracy. The hon. Minister was the Vice-President of the C.S.I.R. and, I hope, he still retains that post. I must ask him: What is his approach to the problem? Is he playing balance of power doctrine which is siding against one group or another or is he siding no group at all or is he boycotting them? What is his outlook to this question? Sometimes, the hon. Minister comes before the House and says he is more concerned with the question of policy.

15 hrs.

Recently, a particular case came to my notice—I crave your indulgence—of a person, Shri Nasiruddin, an Administrative Officer, who was suddenly transferred with great inconvenience to his children. Almost some sort of a vindictiveness was done to him. I would like to know from the hon. Minister whether there is any writ petition in the High Court and, if so, whether he has any comment on it.

Coming to this note of dissent to which I referred earlier, the minority report you may call it—I would say, it is, in fact, the majority report as far as the Members of Parliament are concerned—it gives all this material to show the bunglings and mismanagement of the C.S.I.R. from 1962-63 onwards. The Sarkar Committee Report which has come to us is a very distressing document because it mentions of irregularities but yet it has not probed into them fully. It shies away from the logical consequences which should have followed. In this context, one would like to know whether the report is serious in what it tells us. The hon. Minister tells us that an officer will be appointed to go into all these cases. There was an I.A.S. officer who was the Secretary of the Committee. But now a new officer will be appointed and, when he collects some more data, then perhaps another committee will be appointed and that committee will again recommend another officer to be appointed who will collect further data leading to another committee *ad nauseam*. That is not the way to proceed as far as the serious issues of scientific management are concerned.

I want to ask, take, for example, when the

[Shri M. L. Sondhi]

bye-laws were infringing or the bye-laws were subsequently modified, when was the approval of the Government of India secured and on what date? If those bye-laws were not followed fully, what has the Minister to tell us regarding the appointments which were made in those conditions, how particular persons were always functioning in these committees, again, and again, what were the instances of several persons being transferred from laboratory to laboratory, and then sent to the central office in order to accommodate these persons? All these are undoubtedly very serious matters which have to be gone into details.

When we come to the question of brain-drain, when we say that the people leave our country and go away, we must also understand why it happens. There is frustration amongst scientists who are competent persons and who are ignored because a certain vicious circle comes into operation. It is not a question of finding out whether this happened in one case or in many cases. Why it should happen at all is a disgrace to us. We have committed ourselves to a scientific revolution. This has been the spirit of our national movement which was marked by the holding of the Indian Science Congresses even in the pre-freedom period.

Several facts have been omitted. This is what the minute of dissent says. It says that there are certain facts which have not been brought out. In the very beginning of the note of dissent, it is stated :

"Firstly, we find that the statements made by Dr. Zaheer before the Committee have been given an uncritical credence and an un-merited prominence. Secondly, several facts which strongly suggest that Dr. Zaheer may have unduly favoured his earlier associates from the PRL, Hyderabad, have been either completely omitted or mentioned very casually."

This needs to be gone into. There are very many details. I do not want to tire the patience of the House. There are various paragraphs of the minute of dissent which require implementa-

tion and which require analysis and judgment. I know this is what the Minister will say, "This is the Sarkar Committee; I am the Minister." I would say, the Sarkar Committee is the Sarkar Committee and Minister is also the Sarkar, that is, the Government. He cannot shelter himself behind this.

I would say here, these general conclusions about the Sarkar Committee Report, the note of dissent, these cases of Hyderabad officers, all these things, must be gone into. The hon. Minister must give a clear answer to all these points. As a matter of fact, I am surprised that there has been no separate chapter on the Selection Committees, their formation, their manner of functioning, how they selected the candidates, etc. There should have been a separate chapter. I hope, when Part II comes out, it should really remedy all the lacunae which are in Part I. We do not want to be told that the Committee was concerned with an act of diplomacy and did not want to offend any body. In this country we have to offend people. We, in the Opposition, have a bounden duty to put the Government in the dock because that is the basis on which democracy functions. You cannot win respect for your country and for scientific procedures in the country unless there is an unrelenting honesty of action. No matter even if it is your own blood brother on the other side, you have to accuse him incessantly in the interests of scientific progress.

Now, I would say, Sir, very strange explanations came from the Minister last time when we asked him about Dr. Parpia, Director of the Mysore Institute. He said he would refer the matter to Mr. Subramaniam. It passes our understanding. Mr. Subramaniam is a politician and not a very successful politician. Why trouble him in such matters, Sir?

Now I crave your indulgence to say a word about the higher institutes of Education in this country because that sets the pattern for others. We have IITs, you know, in various parts of the country. What are the lessons of technological development? Has the Minister not shown enough complacency so far as far as

building up of India's technological education is concerned? These institutes which were set up with technical collaboration seem to persist in technical collaboration as if it is a vow of matrimony. What is there to prevent them from standing on their own feet? Government has duplicated the administrative pattern of their own to these IITs, which are not suited to their administration. The present system of allocation of time for research, academic qualifications and categorisation of staff are not suited to provide recognition to real professional people. The professionals in particular are deprived of stimulation by encouragement necessary for research and specialisation. The interference in formulating courses is humiliating. The Directors' functions and their appointments and the acts of bureaucracy are over-centralised. The Professors have no powers and fundamental research is ignored. The Minister must take the House into confidence as to what are the guidelines for these IITs. Particularly, they give extensions to Directors. Sir, this Ministry is called Ministry of Education and Youth Affairs. I find that in fact it is the Ministry of Education and Old Affairs—very old affairs.

THE MINISTER OF EDUCATION AND YOUTH SERVICES (DR. V. K. R. V. RAO): Like the Minister.

SHRI M. L. SONDHI: The particular problem is that the syllabus and the courses are very heavy. There is no time for library work. Students are depressed and demoralised and the rate of suicides has gone up. I would ask him to examine it. It is not a matter to be ignored.

I crave your indulgence, Sir, to refer to the question of libraries because without a library there can be no higher education. We know it ourselves. We are concerned with a libraries in our Parliament and elsewhere. Why is the Government not telling us as to what is the truth about these libraries? Here I find there is the Jha Committee on National Library and Khosla Committee on the National Library. I know one is with the article 'the' and the other is without the article. Perhaps the Minister can tell us what it means. Whatever it means, why don't you tell us the facts? Are

these top-secret documents? Why should we not know about these? There is the National Advisory Board on Library set up under the chairmanship of the Union Minister for Education in 1966 for establishment, improvement, regularisation, popularisation and development of libraries in the country in general. Nothing has been heard of it. The Board is dead as Dodo.

Sir, we have got the greatest living librarian of the world, a person who advises other countries, Mr. S. R. Ranganathan. I will salute him as the father of library science. Has the Minister taken him into confidence? Has he ever asked him about review procedures for library?

Sir, a word about the India Office Library because this is a matter which concerns all of us. Initially we had negotiations where we took a strong stand. Then we backed out. We backed out to the British Government. We went on bended knees to the British Government and the Pakistan Government and we accepted the principle of a tribunal arbitrating in the matter in 1965 and the latest progress in the matter is still a mystery. We do not know anything about it.

Coming nearer here, the Estimates Committee of Parliament writing on the National Archives of India made a startling disclosure that about two-thirds of the collection of 200,000 works are still to be listed. They do not have even staff to list them. They have been dumped there. These are valuable books. I demand of the Minister that a non-official committee of library experts be appointed to advise the Government to fill the lacunae. The question about the National Library is one thing which merits the attention of the Minister. Mr. Hiren Mukerjee here has time and again been raising this matter, but we do not know about the action taken. The Khosla Committee was appointed to go into the strained relations. There are strained relations everywhere. There are strained relations within the ruling party; there are strained relations between the ruling party and the opposition; there are strained relations in the Cabinet; and now there are strained relations within the

[Shri M. L. Sondhi]

National Library. The Minister of Education to my mind, does not take us very seriously. That is my charge against him. The other day I raised the question about a book publishing House and PL 480 and he did not care to reply to me I make this charge against him. About the books that we are getting in this country, Sir, who decides? The book-sellers or the USIS or somebody else in a foreign embassy. Why should we be in this condition? I would like to know from the Minister whether these arrangements which have been made with the United States, the USIS and USSR are working to our advantage at all. This sort of association with USIS or some other organisation takes away all the initiative on their part, making them part and parcel of another organisation. The Indian edition is priced at 1/4 or 1/5 of the original American edition. The Indian publication is subsidised to the extent of 80% of the cost of production and then, Sir, there is a 'side show' which is run; I am told in official circles it is called 'irregular PL 480'. And this book programme side show is that certain general books are taken; they are reviewed, translated, approved. At each stage money is paid; then finally the book is printed; nobody wants that; the godown is also built for them and the books remain in the godowns always. This scenario will interest the Minister, who has got a very logical mind. That I grant to him.

I am prepared to lay on the Table here with your permission a list of books published by some academy; it says, 'thought-provoking publications'. I challenge the Minister to tell me if any of these books listed here will provoke his thought or lull him to sleep; I challenge him. How are these books selected? How did they come to be known? There is a book called "Essence of Trade Unionism"—by a person called Feathers. We don't know whether there will be some other books by Bird or Crow or some other unknown author. I would like to ask him about this. Here is a Minister coming to be Minister of Education, a university teacher, a friend of school teachers. What is the condition of our schools and teachers? I would invite him any day to come with me to see the schools in Delhi and New Delhi, and see

what they are.

One final word about student indiscipline; we often ask ourselves what is wrong with our students. But I think something is wrong with us rather than with our students.

I have got a case study here and this is about the Institute of Architecture. I find a news item here which is from *Evening News*, 20th April 1970 which says:

'Architecture school' deadlock: Both sides stick to their guns'-that is, students and the academic side. What is the Minister doing, I don't know. The Minister says: No, I will not touch the whole thing—just like that certain character who would not decide what to do with Christ. He says, I wash my hands off. I find here certain editorials written, editorials which are not flattering to the Minister. Here is, an Editorial and I quote from the Editorial of journal called *Design*, April, 1966. It says:

"There is a cynical indifference to the state of affairs on the part of the Education Ministry and an alarming rise in the percentage of failures each year.....which do little credit either to the Board of Governors who manage its affairs or to the Ministry of Education which is supposed to oversee them."

This is about the School of Planning and Architecture. I also find here correspondence from Mr. Piloo Mody who has written a letter saying that he would like to resign from the Editorial Board of the Magazine with reference to this very editorial. I don't know what it is. I request the Minister that he should not hesitate to come in and exercise some judgment in these matters and that judgment is to look upon our educational problem as a matter of life and death, which is of vital concern to the nation.

There is one final word with which I will close. I asked the Minister a question whether he intended to celebrate the Centenary of Ananda Coomaraswamy, the greatest Asian who ever lived, to my mind, a person who understood Indian art, Indian culture, Indian literature, Indian science and so on, a link between India and Ceylon, a link between India and

South-East Asia ; the Minister has replied to me by a negative answer ; I don't know really what Kumaraswamy he thought ; I hope there is no Congressman called Kumaraswamy. With these words I conclude. Thank you.

श्री नवल किशोर शर्मा (दोसा) : उपाध्यक्ष महोदय, शिक्षा मंत्रालय की मांगों के सम्बन्ध में बोलने के लिये मैं खड़ा हुआ हूँ। शिक्षा की पद्धति के बारे में, उसमें परिवर्तन लाने के बारे में, इस क्षेत्र में हमें जो असफलता हाथ लगी है, उसके बारे में अभी मेरे मित्र दीक्षित जी ने बहुत कुछ कहा है। दुर्भाग्य की बात यह है कि देश में सभी लोग यह मानते हैं कि शिक्षा में प्रगति नहीं हुई है, शिक्षा पद्धति में आमूल चूल परिवर्तन नहीं हुए हैं, लेकिन फिर भी इस दिशा में कुछ किया नहीं जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस विषय में कुछ भी करने की स्थिति में हम नहीं रहे हैं। हालत ज्यों की त्यों चली आ रही है। इतना होने पर भी शिक्षा की मद पर होने वाला जो खर्च है और जो उसके लिये धनराशि आवंटित की गई है, वह भी बहुत थोड़ा है। लेकिन उस पर न जाकर मैं आप का ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हूँ कि मजबूत ही गया ज्यों ज्यों दबा की, वाली कहावत ही आज चरितार्थ हो रही है। जितनी ज्यादा कमिशन और कमेटियाँ बँठीं और जितनी ज्यादा शिक्षा पद्धति के बारे में छानबीन की गई उतनी ही ज्यादा बीमारी बढ़ती गई, बीमारी का इलाज न होकर और भी खराबियाँ पैदा होती गईं।

अभी मेरे मित्र नाहाटा जी ने शिक्षा मंत्री का ध्यान एक रिपोर्ट की तरफ दिलाया था। इस तरह की बहुत सी रिपोर्टें हैं। अभी सौंघी जी भी एक रिपोर्ट का जिक्र कर रहे थे। रिपोर्टें तो बहुत सी पेश हुई हैं लेकिन शिक्षा मंत्रालय ने उन पर कभी अमल करने की दिशा में कोई कदम नहीं उठाया। राब साहब

तो यहां तक कहते हैं :

"We find ourselves very helpless to do anything except giving advice."

अपनी इस हालत को उन्होंने इसी सदन में स्वयं स्वीकार किया है, अपनी विवशता को उन्होंने स्वयं यहां प्रकट किया है।

इस विषय पर और अधिक न कह कर मैं आज के दिन शिक्षा मंत्रालय का ध्यान दो खास मुद्दों की तरफ दिलाना चाहता हूँ। पहली बात तो मैं हिन्दी के बारे में कहना चाहता हूँ। शिक्षा मंत्रालय का काम हिन्दी का प्रसार और प्रचार करना है। हिन्दी हमारे देश की राष्ट्र भाषा है। संविधान ने उसको राष्ट्र भाषा का स्थान दिया है। लेकिन दुर्भाग्य इस बात का है कि हिन्दी को वह स्थान अभी तक भी प्राप्त नहीं हुआ है। इसके कई कारण हो सकते हैं। एक कारण हिन्दी प्रेमियों का अधिक उत्साह हो सकता है। दूसरा दलगत राजनीति से प्रभावित होकर राज नेताओं का भाषा के बारे में अपनाया गया रुख हो सकता है। कारण कोई भी रहे हों लेकिन क्या केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय इस बारे में जागरूक रहा है, यह सबसे बड़ा सवाल है। मेरा खयाल है कि केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने इस बारे में अपनी ओर से जो प्रयत्न उसको करने चाहिये थे उनको उसने नहीं किया। यह बिल्कुल असफल रहा है हिन्दी के मामले में। इनकी जो वार्षिक रिपोर्टें हैं उसको अगर पढ़ा जाय तो उसमें इन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि पिछले वर्ष हिन्दी के लिये जो धनराशि रखी गई है, उसको खर्च नहीं किया जा सका है। इसी से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी की उपेक्षा इनके मंत्रालय द्वारा बराबर की जा रही है। स्वयं सेवी संस्थाओं को आर्थिक सहायता देने के लिये चौदह लाख रुपये की व्यवस्था की गई थी लेकिन फरवरी तक चार लाख रुपये की ही सहा-

[श्री नवल किशोर शर्मा]

यता इन् संगठनों को दी जा सकी थी। बाकी जो 10 लाख रुपया बचा उसके बारे में मैं शिक्षा मंत्री जी से पूछना चाहता हूँ कि वह क्यों खर्च नहीं किया गया? स्वयं सेवी संगठनों के लिए जब चौदह लाख रुपए की राशि रखी गई थी और उस राशि का उपयोग हिन्दी के प्रसार और प्रचार में करना था अगर उसको खर्च करने में शिक्षा मंत्रालय असफल रहा है, तो उसकी इस असफलता को गम्भीर असफलता समझा जाना चाहिये और गम्भीर आरोप का वह भागीदार है।

भारत सरकार के कार्यालयों में हिन्दी अनुवाद के लिए, मैनुअल्ज और संहिताओं आदि के अनुवाद के लिए जो रुपया रखा गया था, उसको खर्च करने पर भी समुचित ध्यान नहीं दिया गया। केवल एक लाख रुपया इम काम में खर्च किया गया। यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है। अनुवाद कार्यक्रम को प्राथमिकता दी जानी चाहिये थी। आवश्यकता तो इस बात की थी कि इस काम के लिये ज्यादा धनराशि खर्च की जाती, लेकिन इसके लिये केवल दो लाख रुपये निर्धारित किये गये और उसमें से भी यह मंत्रालय केवल एक लाख रुपया खर्च कर पाया। जहाँ तक की काम की मात्रा का प्रश्न है, इस साल 23,000 पृष्ठों का अनुवाद होना था, लेकिन केवल 12,000 पृष्ठों का अनुवाद किया गया। इससे पता चलता है कि डा० राव हिन्दी के कितने प्रेमी हैं। मुझे कभी कभी डा० राव की नेकनीयती पर शंका होने लगती है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि डा० राव उस क्षेत्र से आते हैं, जहाँ दुर्भाग्य से हिन्दी का घोर विरोध किया जाता है। उन्होंने हिन्दी की जो अवहेलना की है'.....

श्री प्रकाशवीर शास्त्री (हापुड़) : यह बात ठीक नहीं है। डा० राव उस क्षेत्र से आते हैं, जहाँ हिन्दी का विरोध नहीं है। मैसूर में हिन्दी

का कोई विरोध नहीं है मद्रास में है। वह स्वयं हिन्दी-प्रेमी हैं। (अभ्यवधान)

श्री नवल किशोर शर्मा : श्री प्रकाशवीर शास्त्री का कहना है कि डा० राव हिन्दी के विरोधी नहीं हैं। उन्होंने यह भी कहा है कि डा० राव उस क्षेत्र से नहीं आते हैं, जहाँ हिन्दी का विरोध हो। मेरा निवेदन यह है कि मंत्रालय का जो कार्य-कलाप रहा है, जो काम करने का तरीका रहा है, यदि उसके बारे में किसी तरह की शंका उत्पन्न होती है, तो मंत्री महोदय यह जानकारी दें कि उनकी ओर से हिन्दी की उपेक्षा क्यों की गई।

जहाँ तक विश्वविद्यालय स्तर की हिन्दी की पुस्तकें तैयार करने के काम का सम्बन्ध है, उसमें भी अभी तक कोई विशेष प्रगति नहीं हो सकी है। वह काम बड़ी धीमी रफ्तार से हो रहा है। पिछले वर्ष इस काम के लिये 1.50 करोड़ रुपया निर्धारित किया गया था, लेकिन उस में से केवल 60 लाख रुपया ही खर्च हुआ है। राष्ट्रीय पुस्तक बोर्ड के लिये जो राशि निर्धारित की गई थी, उसका भी केवल आधा भाग ही खर्च हुआ है।

इन सब बातों को देखने से इस नतीजे पर पहुंचना पड़ता है कि हिन्दी के प्रति इस मंत्रालय की जो नीति रही है, वह ऐसी नहीं है, जिससे लोगों के मन में विश्वास पैदा हो। मैं यह मानने के लिये तैयार हूँ, जैसा कि श्री प्रकाशवीर शास्त्री ने कहा है, कि स्वयं डा० राव हिन्दी के हामी होंगे। लेकिन उनका मंत्रालय तो निश्चित रूप से उस रीति-नीति पर नहीं चल रहा है। वह तो हिन्दी की प्रगति के लिये कोई काम नहीं कर रहा है। मैंने मंत्रालय के अपने प्रतिवेदन और उसके द्वारा उपलब्ध आंकड़ों से यह बताने की कोशिश की है कि किस तरह से हिन्दी की उपेक्षा की गई है। इसलिये मैं समझता हूँ कि इसकी जिम्मेदारी डा० राव

के अलावा किसी दूसरे की नहीं है, क्योंकि वही शिक्षा मंत्रालय के इंचार्ज हैं।

क्या मैं यह उम्मीद करूँ कि डा० राव इस बात का जवाब देंगे कि यह कमी क्यों रही है? क्या वह यह आश्वासन भी देंगे कि आइन्दा वह हिन्दी के विकास की ओर समुचित ध्यान देकर यह प्रयत्न करेंगे कि वह देश की राष्ट्रीय भाषा का स्थान ले सकें? मैं यह नहीं चाहता कि हिन्दी को किसी पर लादा जाय। लेकिन मैं निश्चित रूप से यह चाहता हूँ कि ऐसे साधन सुलभ किए जाएँ, ऐसी स्थिति और ऐसा वातावरण पैदा किया जाए कि हिन्दी के प्रति लोगों में उत्साह और प्रेम हो और वे हिन्दी की ओर झुक सकें। इस काम का दायित्व डा० राव के जिम्मे है। मैं उम्मीद करता हूँ कि वह इसको पूरा करेंगे।

मैं डा० राव का ध्यान देश में बढ़ती हुई हिंसा की प्रवृत्ति की ओर दिलाना चाहता हूँ। हाल ही में हमारे देश में विद्यार्थियों में हिंसा की प्रवृत्ति बहुत जोरों से बढ़ती जा रही है। आये दिन अखबारों में ये समाचार प्रकाशित होते हैं कि किस तरह से परीक्षाओं में हत्याएं होती हैं और परीक्षा-केन्द्रों को युद्ध-स्थल बनाया जा रहा है। शांसी से करीब 120 मील की दूरी पर एक अध्यापक द्वारा नम्बर बढ़ाने की बात न स्वीकार किये जाने पर विद्यार्थियों ने उसकी बुढ़िया सास को कत्ल कर दिया। अमरोहा में परीक्षा केन्द्र की देख-रेख का कार्य जिलाधीश और पुलिस के द्वारा किया गया। बरेली के एक कालेज के चारों तरफ कांटेदार तार लगाने पड़े, ताकि बाहर के लोग परीक्षा में दखल न दे सकें। बंगाल में आये-दिन हिंसा की घटनाएँ होती हैं। बनारस विश्वविद्यालय-महामना मालवीय जी द्वारा स्थापित विश्वविद्यालय—रोजाना अखाड़ेबाजी का केन्द्र बना हुआ है। इतना ही नहीं, राजस्थान जैसा प्रान्त भी इस प्रवाह

से अछूता नहीं रह सका है, जहाँ हिंसा का कोई नाम तक नहीं रहा है। वहाँ भी विद्यार्थियों के दो दलों में शगड़ा हुआ, जिसमें कत्ल हुआ।

यह प्रवृत्ति देश के लिये, देश के प्रजातन्त्र के लिये सबसे बड़ी चुनौती है। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिये कारगर कदम उठाये जाने चाहिये। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिये, उसके इलाज के तौर पर, कहा जाता है कि विद्यार्थियों का कालेज की व्यवस्था में पार्टिसिपेशन होना चाहिये, और परीक्षा की प्रणाली में परिवर्तन करना चाहिये। चाहे कुछ भी किया जाये, लेकिन मैं समझता हूँ कि ये सब अचूरे इलाज हैं। इस सम्बन्ध में कोठारी कमीशन ने कहा है।

“Whatever else the educational system may or may not do, it should at least strive to enable young men and women to learn and practice civilised norms of behaviour and commit themselves honestly to social values of significance.”

मैं कहना चाहता हूँ कि अगर कोठारी कमीशन की इस राय के मुताबिक कार्य करने की दिशा में कोई कारगर कदम उठाए जाएँगे, तभी हमारे देश में हिंसा की प्रवृत्ति को रोका जा सकेगा।

जहाँ तक अध्यापकों का सम्बन्ध है, यह सही है कि उनका जीवन स्तर ऊँचा नहीं उठाया जा सकता है, क्योंकि आर्थिक साधनों की कमी है। लेकिन कुछ ऐसे काम निश्चित रूप से किये जा सकते हैं, जिससे इस देश के अच्छे और योग्य लोगों में अध्यापक बनने की इच्छा पैदा हो सकती है। उनको मकानों और जमीन की एलाटमेंट, बच्चों को स्कालरशिप देने और दवा-दारू के बारे में कुछ सहूलियतें देने और उनका मान सम्मान कायम करने की व्यवस्था करने से हमारे देश में अच्छे लोग अध्यापक बनने के लिये प्रेरित होंगे। आज जो यह प्रवृत्ति है कि जिसको और कोई

[श्री नवल किशोर शर्मा]

रोजगार नहीं मिलता है, वह अध्यापक बनने की कोशिश करता है, उस प्रवृत्ति का अन्त करना पड़ेगा।

इन शब्दों के साथ मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।

SHRI MANIBHAI J. PATEL (Damoh) : I would like to know whether my name is there or not.

MR. DEPUTY SPEAKER : Your name is there, but very low down in the list.

SHRI SAMAR GUHA (Contai) : Many of my hon. friends here have expressed regret that sufficient attention has not been given for the development of Hindi. My glance through the budget grants made by Education Ministry shows that for the development of national language in 1969-70, the expenditure on Hindi in various forms come to Rs. 1.85 crores and for the 13 other Indian languages, Rs. 7.18 lakhs. The ratio is: Hindi : 13 Indian language : 27 : 1. I do not want to make any other observation.

There was a half an hour discussion in the House about expenditure met by the Government on the roll of honour which this Government wanted to show on Netaji Subhas Chandra Bose. Here are some statistics. They spent this year some amounts on national heroes: Gandhiji—Rs.1.01 crores; Pandit Nehru—Rs. 3.119 crores; Lal Bahadur Shastri—39.79 lakhs; Zakir Hussain—Rs.2 lakhs; Netaji—Rs.5,000. The ratio—Gandhiji : Pandit Nehru; Shastri : Zakir Hussain : Neta ji : 2020 : 6238 : 800 : 40 : 1. No comment is necessary from me.

While going through the Budget grants one very interesting thing attracted my attention—what the Government are doing on moral and spiritual education. For 1968-69 the budget estimate was Rs. 20,000. For 1969-70—nil; for 1970-71—nil. Hail the Governments new sense of morality which has downed in the new milieu. On the basis of this new morality let me take up this report on the

CSIR. This is not a report; this is a fraud committed on the hopes and expectations of this House on the basis of which the Sankar Committee was constituted. I observe with all sense of responsibility that this report is an intriguing document, intriguingly prepared with a view to intriguingly white wash the misdeeds of persons who denigrated this great institution into a cockpit of corruption, inefficiency, favouritism and power politics as against the high objectives of development of science and technology for the benefit of our nation. I charge this Government of this. I ask the Minister: is it a fact that the original report that was submitted was different? I have here the original report that was circulated among the Members of the Committee—a document of 235 pages. The final report that is with me here is 146 pages. What does it mean? It means that many documents, many facts have been suppressed, white-washed or with-held. It has been tainted, twisted and truncated. I shall give you some facts. A letter was submitted to the committee but that letter was not included even in the original report that was circulated among the members. What is this letter: a letter from D. S. Johar, SSO head of the division of micro-biology and sanitation dated December 5, 1961:

“Dear Mr. Kidwai,

Mr. A. Rahman, Assistant director, took the parcel from me containing the samples to be delivered to you. But the parcel was sent back to me from Bangalore by Dr. Parpia.

Now I am sending the parcel of the samples through Shri Gundu Rao of CFRRI who will be reaching Delhi on 10 December and who will personally meet you and deliver the articles, namely, grape wine (4), whisky (1), Vodka (1), and Gin (1) for your favour of valuable opinion.

I am very sorry for the delay. Hoping you won't mind it. With respectful regards,

Yours sincerely,  
(D. S. Johar).”

This letter was circulated to the members,

but it was not included in the original and also in the final report.

Sir, I will quote a few other instances also. I can multiply many of such things. Another report has been whitewashed: the report on Shri Bharat Bhushan, a third class B. Sc. (Hons), and a second class M. Sc. who got the job of Assistant Director, RRL Hyderabad, by fraudulently describing himself as a Ph. D. It was mentioned in the original draft, but it was suppressed in the final draft. The confidential report of Dr. M. S. Ayyangar, Director of the Regional Laboratory, Jorhat, was mentioned in the original draft but was not mentioned in the final report. Dr. Qureshi, now Assistant Director, Geophysical Laboratory, Hyderabad, was manipulated to supersede three superior candidates for a job first carrying a scale of Rs. 700 to 1200 and suddenly, within a week, to the scale of Rs. 1300—1600. Instances can be multiplied. If the Education Minister wants them I shall give them to him. I have brought here one volume, containing one big chapter of the activities of the Hyderabad laboratory, a synopsis of it. If he wants, I can give him the original draft.

Now, I will tell you what the former Director General of the CSIR did? Nobody in the country knew that there were hidden jewels, a stockpile of hidden jewels, of scientific talent in Hyderabad. It was not known to anybody. But Dr. Husain Zaheer, when he became the Director-General of the CSIR, within four months, with the sweeping capacity of a military General, planted eight of his men from the Hyderabad laboratory to key-posts in different areas of the country. You will be astonished to know that these appointments were made without any advertisement whatsoever. First, Dr. S. A. Salatore was arbitrarily transferred and his pet, Dr. D. S. Datar was, first made Deputy Director of the Hyderabad laboratory, and within a week, he was given the post of Deputy Director of the Bhavnagar laboratory, without advertising the post. Then, Dr. Siddhu, who was personally requested by Dr. Husain Zaheer to accept the post of Director of Hyderabad laboratory, again without advertisement. Then, a select man of the Deputy Director of Petroleum Institute was

by-passed, and Dr. Husain Zaheer appointed Mr. M. M. Krishna for the post, without advertisement. Then G. S. Chaudhuri was appointed Deputy Director of the CMERI at Durgapur by himself without advertisement. Dr. M. S. Ayyangar was made Director of the Jorhat laboratory; no advertisement. Dr. K. S. Chari made Design Engineer; no advertisement. Dr. Baldev Singh made ILO Director; no advertisement. Mr. Rahman, about whom even an article appeared in the *Statesman*, was also given charge of the historical unit at Rafi Marg, Delhi without the approval of the Governing Body, and transferring him from the laboratory against opposition from its director.

I charge Dr. Zaheer. Many of these things were suppressed by the former Director General. He is responsible for the following guilts: some posts were deliberately kept vacant by him for sometime, and then suddenly filled up by his chosen men. Secondly, posts were created, providing a higher pay to the existing incumbents. Thirdly, posts were created for which there was no necessity. Fourthly, posts were transferred from one laboratory to another....

MR. DEPUTY SPEAKER: The hon. Member's time is up.

SHRI SAMAR GUHA: I have just started. I am contributing very valuable information;—and from the laboratory to the headquarters, for manipulating jobs for chosen persons. Fifthly, many senior posts were filled without advertisement, without selection committees, without any competition of talents, and hand-picking candidates of pre-arranged choice. Sixthly, he appointed persons in high posts who did not apply nor appeared for interview at the interview committee, but only chosen by the Director himself. As a result of this, it has become a cockpit of corruption, inefficiency, degeneration and degradation. It has degenerated the CSIR into a position where it is no longer a research centre. It has become an institution of mediocre scientists from which you cannot expect anything. A Rs. 20 lakh Hyderabad Classification Project and Dr. Siddhu, a duplicate of Dhanbad Fuel Research Project has now turned to

[Shri Samar Guha]

be a Rs 200 lakh project.

What does the report say about this? It says:

"It should have struck the authority concerned that the appointment of such a large number of persons from one laboratory to the highest posts in the organisation will attract criticism and it should have been avoided in the interests of the organisation." What is the comment? The comment says:

"The committee have noted that in several cases out of the 270 cases studied by it, the CSIR have not followed the rule and regulations. It is not suggested that the violations of the rules has been made mala-fide. It may have happened because the authorities lost sight of the rules."

I would say, it is not the authority that lost sight of the rules. It was not expected of a retired Chief Justice of the Supreme Court that he will succumb either to fear or to temptation. It has been done to save the skin of the 'Munne' of a certain illustrious house and darling our ruling family. Mr. Sarkar has got another job. He has become the one-man Chairman of the committee to enquire into the Birlas. I am very sorry to make this remark. It is not easy. If I had the time, I could have proved and substantiated my observations. I demand that if the Minister has any honesty, if he has any faith in this House, this original report that was circulated and that had been suppressed, that should be placed before this House and a full-fledged discussion should be held by this House to expose the sin committed by one who is known as the retired Chief Justice of India.

Now, Sir, Coming to another issue. A dacoity has been committed. I am referring to the para-psychology institute at Jaipur. It was transferred from Ganganagar to Jaipur at the request of Dr. Sampurnanand, then Chancellor of Rajasthan University. It was a regular Institute and 50 per cent of the expenses were borne by the UGC. Suddenly on 21st November, when the Director of this institute was on tour in America, the other authorities seized that unit, sealed it and my report is that

his manuscripts, all the data he had collected and his valuable research equipments have been sold out to an American researcher, who is also doing parapsychology research in an American institute. I had written a letter to the minister without knowing the full details; just seeing a report that appeared in the paper. In our country, we believe in the theory of *karma* and rebirth. Parapsychology, to me at least, is a very novel and new type of research conducted in our country and it would be very helpful for our philosophical understanding of the values and truth of the fundamentals of Indian culture. The minister gave a fishy reply, but I enquired about the whole matter from the Jaipur Institute. You will be astonished to hear what the Select Committee of the Teachers' Association have said about it. They have said:

"The Director of the Department has unquestionably been given a rough deal by the university. The matter of this Department has been ineptly handled by the University authorities... The work being done by the Department is good and commendable and recommended that the Department be put on a permanent footing... The work done by the Department was highly useful and that the security of the tenure of the Director be ensured... The action taken by the university is most objectionable and untenable from every point of view."

This Director has been invited by 20 foreign countries, including two communist countries, Russia and East Germany. When he was in America on study tour, certainly it was not expected that the university authorities could commit raid and dacoity on the night of 21st November, in his institute. That institute has been scuttled, closed and sealed. Till now he has not got back his manuscripts, books, data and equipments. Most of these were his personal property and I have been told that in collusion with an American researcher, it has been sold out to the foreign country.

Now, Sir, in conclusion, I will only show this magazine to the Education Minister, which has been published by the Presidency College, Calcutta, every farthing of whose expenditure

is given by the Government. On the first page, it starts with a picture of Lenin, then a picture of Mao Tse-Tung, of Ho Chi Minh and others. It explains how revolution will be started. There are pictures of Charu Mazumdar, the first Naxalite leader, the Srikakulam leaders and so on. Sir, I have no anger. Rather I feel sad. I do not know how our brilliant boys lost their sight and how they could become anti-national. I would request the Education Minister immediately to institute an expert committee to make a study of the cases of at least a few of the brilliant students to find out why they get unpatriotic and anti-national.

**श्रीमती लक्ष्मी बाई (मिडक) :** उपाध्यक्ष महोदय, मैं इस डिमाण्ड को सपोर्ट करने के लिये खड़ी हुई हूँ और धन्यवाद देती हूँ कि आपने मुझे इस पर बोलने का मौका दिया।

15.49 hrs.

[SHRI K. N. TIWARI in the chair]

सभापति जी, मैं इस पद पर पांच मिनिस्टर देख चुकी हूँ, ये इस पद पर पांचवे मिनिस्टर हैं। मैं पिछले 12 साल से देख रही हूँ कि बहुत सी कमेटीज और कमीशनज इस मंत्रालय में बनते हैं, दो तीन साल में चार-पांच लाख रुपया खर्च करने के बाद उनकी रिपोर्ट आती है लेकिन उनपर कोई अमल नहीं होता है। यह डिपार्टमेंट एक ऐसा डिपार्टमेंट होना चाहिये, जो सारे देश की शिक्षा को कन्ट्रोल करे, सबको शिक्षा देने का काम करे, सबके लिये एक आदर्श डिपार्टमेंट बने, लेकिन यहां ऐसा नहीं हो रहा है, उल्टा हो रहा है। पहले जब श्री अब्दुल कलाम आजाद एजुकेशन मिनिस्टर थे तो बहनों के लिये कुछ गुंजाइश होती थी, लड़कियों के वास्ते कुछ आइटम्स होते थे। उनके बाद डा० श्री माली ने भी कुछ कोशिश की। उनके बाद चागला साहब आये और फिर तो मिनिस्टर आ रहे हैं, जा रहे हैं लेकिन इन मिनिस्टरों का भी कोई कुसूर नहीं है परन्तु जो डिपार्टमेंट के सेक्रेटरीज होते हैं उनको कोई श्रद्धा नहीं होती है।

लड़कियों को जो इस तरह से इग्नोर किया जाता है उसकी वजह से यह डिपार्टमेंट बहुत बदनाम हो रहा है। मैं मिनिस्टर साहब से पूछना चाहती हूँ जिसका कि उन्हें जवाब देना पड़ेगा कि सेन्ट्रल एजुकेशन डिपार्टमेंट के क्या फराइज हैं, क्या धर्म है और क्या ड्यूटीज हैं? सेन्ट्रल गवर्नमेंट किसी बात के लिये स्टेट गवर्नमेंट्स को मना नहीं सकती है। लड़कियों की कम्पलसरी एजुकेशन करने, गांवों में टीचर्स को भेजने, इस तरह की किसी भी बात को ताकत आपके पास नहीं है। वे लोग आपकी कोई बात सुनते भी नहीं हैं। इसलिये मैं कहना चाहती हूँ कि फिर सेन्टर में एजुकेशन डिपार्टमेंट को रखने की क्या जरूरत है। यहां पर एडवाइजरी बोर्ड भी रखने की क्या जरूरत है? .. (व्यवधान) .. मैं कह रही हूँ कि सेन्टर में एजुकेशन डिपार्टमेंट रखने की कोई जरूरत नहीं है जबकि स्टेट्स में कोई काम कराने की ताकत आपके पास नहीं है। आप स्टेट्स को एडवाइज भी नहीं कर सकते हैं, कम्पलसरी एजुकेशन भी नहीं करा सकते हैं फिर यहां पर डिपार्टमेंट की क्या जरूरत रह जाती है। जब आप कोई काम नहीं करा सकते, कोई ऐक्शन नहीं ले सकते तो फिर इस विभाग का क्या फायदा है।

इस साल बजट में आपने 170 करोड़ रुपया रखा है लेकिन उसमें से 60-70 करोड़ तो एडमिनिस्ट्रेशन पर ही खर्च हो जायेगा तो फिर फायदा क्या है? इम्बैलेंसज होते जाते हैं लेकिन कोई देखने वाला नहीं है। आप अच्छे अच्छे पंडितों को, विद्वानों को और साइंटिस्ट्स को रखकर क्या करते हैं? केवल रिपोर्ट बनाने में ही आप उनकी ताकत का इस्तेमाल करते हैं। अच्छी-अच्छी रिपोर्ट बनाना और दुनिया को दिखाना, बस इतना ही काम होता है। कमेटीज और कांफेन्सेज में ताकत गंवाने के बजाय कुछ वास्तविक काम करने की भी कोशिश करनी चाहिये।

### [श्रीमती लक्ष्मी बाई]

जहाँ तक आल इंडिया लिट्रेसी की फीगर्स का सवाल है वह केवल 24 परसेन्ट है। जिस स्टेट से मैं आती हूँ, आंध्र प्रदेश वहाँ पर तो 20 परसेन्ट का ही एवरेज है। उसमें भी अगर तेलंगाना को अलग करके देखा जाए तो वहाँ पर वह सिर्फ 11 परसेन्ट ही है। आप कोई डाइरेक्ट स्कीम्स नहीं बना सकते हैं और न डायरेक्ट फंड्स दे सकते हैं। इसी तरह से बिहार, राजस्थान, पू० पी० और मध्य प्रदेश की हालत है कि वहाँ पर कुछ भी नहीं हुआ है। 22-23 सालों के बाद भी आज 24 परसेन्ट लिट्रेसी है और लड़कियों में तो 12 परसेन्ट ही लिट्रेसी है। आप सुन-सुन कर थक जाते हैं और हम भी कहते-कहते बेजार हो जाते हैं लेकिन डिपार्टमेंट में कोई सुनवाई नहीं होती है। आपके पास न्याय करने की कोई ताकत भी नहीं है। मैं देखती हूँ कि एजुकेशन डिपार्टमेंट में और कोई भी काम नहीं हो रहा है सिवाय कमेटीज की रिपोर्ट बनाने के। आने जाने वाले मेहमानों को दिखाने के लिए ही यह सब किया जाता है। आजकल हर एक स्टेट में गड़बड़ है, हर स्कूल में गड़बड़ है। आपने गांधी सिन्टेनरी में एक करोड़ रुपया खर्च किया अभी यह रिपोर्ट आई है। अच्छा किया लेकिन बापूजी के मरने के बाद 22 साल गुजर गये, क्या सिलैबस में आपने गांधियन प्रिंसिपल्स को कोई जगह दी है? आपने कुछ भी नहीं किया है। आपने दस हजार रुपया एक बार रखा, वह भी एडमिनिस्ट्रेशन में खर्च हो गया। मिशनरी स्कूल वाले जिस तरह से रखते हैं उस तरह से आपने कभी नहीं किया। कितने दुख की बात है, जैसा कि समर गुह जी ने बताया कि इतने खराब पैम्प्लेट छापे जाते हैं। जिनको हम चाहते नहीं वह छपकर आ रहे हैं। आखिर आपकी क्या जिम्मेदारी है? आज आंध्र में दो लाख टीचर्स स्ट्राइक पर हैं। 50 हजार बच्चे

स्ट्राइक पर हैं लेकिन क्या आपने कभी इन्टरवीन किया? आपकी कोई बात चलती नहीं। आखिर आपके पास क्या योजना है। मैं आपकी किताबें पढ़ती हूँ लेकिन उनमें कोई भी आपकी योजना नहीं है। बच्चों में मारल स्प्रिचुअल जागरण पैदा करने के लिये आपके पास कोई भी योजना नहीं है। इस देश में जब स्वतन्त्रता नहीं हुई थी उस समय कुछ रेलिजस पढ़ाई भी हुआ करती थी लेकिन वह चीज भी गायब हो गई है। मारल, स्प्रिचुअल और रेलिजस, सभी तरह की एजुकेशन आज गायब हो गई है। घरों में आज स्प्रिचुअल स्पिरिट नहीं रह गई है। पढ़े लिखे लोगों में तो स्प्रिचुअल नाम की चीज है ही नहीं, अगर कुछ है तो अनपढ़ लोगों में ही है। इसलिये मैं समझती हूँ कि आजकल के पढ़े लिखे लोगों से अनपढ़ लोग ही अच्छे हैं जो कि उस तरह का गड़बड़ नहीं करते हैं।

अब मैं टीचर्स के बारे में कहना चाहती हूँ। आपने कोठारी कमीशन बिठाया था, जिसने कई महीने तक काम किया। लेकिन आज कोठारी कमीशन के वास्ते कितनी गड़बड़ हो रही है? आप सेन्ट्रल इंस्टीट्यूशन्स में तो कोठारी कमीशन के मातहत वेतन देते हैं लेकिन दूसरी जगहों पर नहीं देते हैं। नतीजा यह होता है कि सभी जगह के टीचर्स दिल्ली तक की पदयात्रा करते हैं, कहते हैं चलो दिल्ली। आप जब कमीशन बिठाते हैं तो फिर बाद में उस पर अमल भी करना चाहिए वरना फिर बाद में गड़बड़ मचती है।

आपने एजुकेशन पर एक किताब छापी है जिसका नाम मैं भूल गई उसमें कितनी ही अच्छी सूचनाएँ हैं गर्ल्स एजुकेशन के बारे में लेकिन कितना आप करते हैं यह मालूम नहीं। इसी तरह से टीचर्स की सैलरी के लिये भी आपको कुछ करना चाहिए। आपने बिल्डिंग फंड रखा है लेकिन आज गांवों में स्कूलों की इमारतों की क्या हालत है? गांवों में स्कूलों की बिल्डिंग नहीं है, स्टेट गवर्नमेंट्स

बनाती नहीं हैं और आपके पास पैसा नहीं है। जितना पैसा है वह यहीं पर खर्च हो जाता है। आपने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि दो लाख रुपया बिल्डिंग फण्ड में दिया। पूरे हिन्दुस्तान के लिये आपने दो लाख रुपया खर्च किया। आठ इंस्टीट्यूशन्स को बिल्डिंग बनाने के लिए आपने 25-25 हजार रुपया दिया। ऐसे-ऐसे आइटम्स आपके पास हैं लेकिन उनसे होता कुछ नहीं है। गर्ल्स एजुकेशन के सिलसिले में रिपोर्ट में आया है कि स्कूल मवर्स रखनी चाहिए, प्राइमरी स्कूल की टीचर्स में लड़कियों को रखा जाये। श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख ने रिपोर्ट भेजी है लेकिन आप प्राइमरी स्कूलों में उन टीचर्स को नहीं रखते। एक टीचर को पांच जमात पढ़ानी पड़ती है और वह टीचर्स अनपढ़ होते हैं। नतीजा यह होता है कि पढ़ने लिखने के बाद लड़के कुछ काम नहीं करते। ट्रेन्ड टीचर्स भी गांवों में नहीं जाते हैं और जो अनट्रेन्ड टीचर्स होते हैं वह पांच जमात पढ़ाते हैं जिसका नतीजा यह होता है कि बच्चे शांतान हो जाते हैं, वे किसी के कन्ट्रोल में नहीं रहते। इसलिये आपको बुनियादी एजुकेशन पर ज्यादा तबज्जह देनी चाहिए। कालेज और मिडिल स्कूल पर चाहे आप कम तबज्जह दें लेकिन प्राइमरी शिक्षा पर आपको ज्यादा तबज्जह देनी चाहिये और प्राइमरी स्कूलों में लेडी टीचर्स को रखना चाहिये। लेकिन आप तो कुछ मुनते ही नहीं हैं। आपके पास टीचर्स के लिये पैसा ही नहीं है। पार्ट टाइम के लिए बहुत सी लेडीज सिटी और टाउन्स में तैयार रहती हैं लेकिन आप उनकी सर्विसेज भी नहीं लेना चाहते। मालूम नहीं आप क्या करते हैं। आपके शास्त्री भवन में फाइलें इतनी हैं कि वहां जगह ही नहीं है।.....

(व्यवधान) विद्या विहीना पशु समाना-इस तरह से कहा गया है लेकिन मैं समझती हूँ कि आजकल जो विद्या विहीन हैं वही अच्छे हैं। पढ़ने वाले ही आजकल खराब होते चले जा

रहे हैं।... (व्यवधान) आजकल जो सातवों जमात पढ़ते हैं वह भी काम नहीं करते। बेसिक स्कूल के वास्ते आप बहुत चिल्लाते हैं लेकिन उसकी बहुत बदनामी हो रही है। एजुकेशन डिपार्टमेंट ने बेसिक स्कूल के नाम पर हजारों स्कूल खोल दिये हैं लेकिन उनमें टीचर्स नहीं रखते हैं, वहां पर कोई इन्विपमेंट नहीं रहता है। अच्छे टीचर्स नहीं रहते और न अच्छी पढ़ाई होती है। गांव वाले बोलते हैं यह बहुत खराब है।... (व्यवधान) बेसिक स्कूलों की बेइज्जती एजुकेशन डिपार्टमेंट ने कर रखी है। अब तो आप उनको बोकेशनल स्कूल बोलने लगे हैं। बोकेशनल स्कूल के नाम से वह चीज अब सामने आ रही है। कब सरकार इसको सही करेगी मैं नहीं जानती। मैं एजुकेशन डिपार्टमेंट को चेतावनी दे रही हूँ कि अगर बेसिक स्कूल की शिक्षा पद्धति में सुधार नहीं किया तो इसकी जिम्मेदारी विभाग पर होगी।

16 hrs.

अब कुछ बातें मुझे गर्ल्स एजुकेशन के बारे में कहनी हैं। जब तक लड़की पढ़ी लिखी नहीं होती है, मां पढ़ी लिखी नहीं होती है, तब तक समाज सुधार नहीं सकता। हमारे राव साहब की माता इनको पढ़ाती थीं। लड़कियों की शिक्षा खराब करने से समाज नीचे गिरता है और शिक्षा विभाग के पास कोई ताकत नहीं है जो समाज के स्तर को ऊपर उठा सके। इसलिये लड़कियों का पढ़ा लिखा होना बहुत जरूरी है।

अब आप देखें कि शिक्षा पर कितना खर्च होता है। पहले जितना रेवेन्यू आता था उसका 1.1 परसेन्ट खर्च होता था, जब कि आज 2.7 परसेन्ट खर्च होता है। दुनिया के और मुल्कों में 7 और 8 परसेन्ट तक एजुकेशन पर खर्च होता है। कम्युनिस्ट मुल्क 8 परसेन्ट खर्च करते हैं, अमरीका वाले 7 परसेन्ट खर्च करते हैं। और हम लोग दो परसेन्ट

[श्रीमती लक्ष्मी बाई]

खर्च करते हैं। और इसमें से लड़कियों के लिये निल के बराबर खर्च किया जाता है। दूसरे मुल्कों में औरतें पढ़ती हैं, वे पढ़ लिख कर समाज और घर को सम्भालती हैं, बच्चों को खराब होने से बचाती हैं। हमारे यहां लड़कियों की पढ़ाई नहीं है, समाज में उनका कोई स्थान नहीं है। यही कारण है कि बिना पढ़ी लिखी महिलाओं के बच्चे अनुशासन में रहना नहीं सीख पाते। इसलिये मेरा निवेदन है कि यदि आपने जल्दी से जल्दी अडल्ट वीमन की एजुकेशन को ठीक नहीं किया तो इसकी जिम्मेदारी आपके ऊपर होगी और इतिहास आपको दोषी ठहरायेगा। एजुकेशन डिपार्टमेंट इसके लिये दोषी रहेगा।

शिक्षा मंत्री जी ने बताया कि चौथी योजना में 20 करोड़ ६० बहनों की शिक्षा के लिये रखे हैं। मेरा सुझाव है कि इस ६० का प्रयोग यदि आप वीमन्स नेशनल कमिशन की रिपोर्ट में दिये गये सुझावों के अनुसार करेंगे तो अधिक अच्छा रहेगा। नहीं तो आप के खिलाफ बगावत होगी, बहनें बगावत करेंगी और आपके घर में जाकर हम लोग बोलेंगे।

इन शब्दों के साथ मैं आपको धन्यवाद देती हूँ।

श्री मधु लिमये (मुंजर) : सभापति जी, मेरा व्यवस्था का भी प्रश्न है, और इस बहस को स्थगित रखने का भी मैं सुझाव नियम 340 और आपको जो अतिरिक्त अधिकार है नियम 379 के तहत, प्राप्त है, रखना चाहता हूँ। उसका कारण मैं बताता हूँ, बाद में जो आपको करना हो कीजियेगा।

अभी मैंने सुना है कि प्रोफेसर गुहा ने अपने भाषण में सी० एस० आई० आर० के बारे में जो रिपोर्ट पेश की थी, उसके सम्बन्ध में

कुछ बातें कहीं हैं। आज सवेरे मैं मंत्री महोदय से जब मिला तो मैंने उनको इसकी पूर्ण सूचना भी दी है। आज से दो साल पहले मंत्री जी द्वारा राज्य सभा में घोषणा हुई कि एक कमेटी नियुक्त की जायेगी। इस कमेटी के अध्यक्ष थे श्री सरकार, जो सुप्रीम कोर्ट के भूतपूर्व चीफ जस्टिस भी रह चुके हैं। लेकिन अफसोस की बात है कि इस कमेटी के द्वारा जो रिपोर्ट तैयार की गयी थी उसके बाद में, जो पुराने डायरेक्टर जनरल थे, जिनके खिलाफ यह जांच थी, उनके दबाव में आकर और प्रधान मंत्री के दबाव में आकर इस रिपोर्ट को बदला गया है। प्रोफेसर साहब सीधे सादे, भले आदमी हैं इसलिये शायद उनको इस बात का पता नहीं होगा। लेकिन मैं सबूत के साथ इस बात को आपके सामने रखना चाहता हूँ। क्योंकि शिक्षा मंत्रालय की मांग में सी० एस० आई० आर० की रिपोर्ट पर बहस होगी, अगर सदस्यों के सामने सही जानकारी नहीं होगी तो बहस का मतलब क्या है।

रिपोर्ट का जो पहला हिस्सा पेश किया गया है, मैं मूल रिपोर्ट की बात नहीं कह रहा हूँ जिसको बदला गया है, यह जो पेश किया गया है उसमें कुछ सदस्यों ने अपना मिनट आफ डिसेंट लगाया है। मेरी समझ में नहीं आता हमारे सदस्यगण जो कमेटी के थे, उन्होंने ऐसी भाषा में अपनी असहमति को क्यों रखा ? उसमें से केवल एक वाक्य ही मैं पढ़ना चाहता हूँ :

"Firstly we find that the statements made by Dr. Zaheer before the Committee have been given an uncritical credence and an unmerited prominence. Secondly, several facts which strongly suggest that Dr. Zaheer may have unduly favoured his earlier associates from RRL, Hyderabad, have been either completely omitted or mentioned very casually. The net effect is an overall impression on the readers' mind that nothing more

than minor procedural lapses are involved in these appointments."

यह असहमति पत्र में कहा गया है। क्या कहा है उन्होंने omitted or mentioned very casually यह मूल रपट है इसका जो महत्वपूर्ण चैप्टर 6 है इसको पूरी तरह बदला गया है, और आज ए० के० सरकार साहब को बार-बार नये-नये कमीशन दिये जा रहे हैं। बिड़ला इनक्वायरी भी इन्हीं के हाथ में सौंप दी गयी है, और अमीं चन्द प्यारे लाल का मामला भी इनके हाथ में था। और उसमें जो मिनट आफ डिसेंट है उससे साफ जाहिर होता है कि सरकार साहब ने अपनी जिम्मेदारी को नहीं निभाया। मैं यह सवाल नहीं उठाता, लेकिन मुझे डर है कि बिड़ला इनक्वायरी को चौपट करने का काम भी यह श्री ए० के० सरकार करने जा रहे हैं, जैसा कि श्री अमीं चन्द प्यारे लाल वाले मामले को और सी० एस० आई० आर० के बारे में इन्हीं ने किया है।

क्या वजह है कि श्री ए० के० सरकार और श्री गजेन्द्र गडकर, इन दोनों के अलावा और किसी को इस तरह के काम सरकार नहीं देती? श्री सुब्बा राव की जो मान्यता थी, वह सुप्रीम कोर्ट में श्री गजेन्द्र गडकर और श्री सरकार से कई गुना ज्यादा थी। लेकिन चूंकि वह आपके उम्मीदवार के खिलाफ राष्ट्रपति का चुनाव लड़े इसलिये आप उनको कोई कमीशन नहीं देते। हालांकि मेरी राय है कि भूतपूर्व जजों को कोई कमीशन नहीं देना चाहिये क्योंकि जजों को खरीदने का काम इसके द्वारा आप करते हैं और न्यायालय की स्वतंत्रता को आप बरबाद कर रहे हैं।

तो क्या मंत्री महोदय, इस बात का खुलासा करेंगे कि यह मूल रिपोर्ट आपने देखी है? और यदि देखी है तो उसको बदलने का कारण क्या है? किनके दबाव में यह बदली

गयी और क्या पार्लियामेंट को इन तथ्यों से अवगत किया जायगा? और जब तक अवगत नहीं किया जायेगा तब तक दो ही रास्ते रह जाते हैं—शिक्षा मंत्रालय की बहस को स्थगित किया जाय, सारे तथ्य सदन के सामने आवें। मंत्री जी आश्वासन दें कि सी० एस० आई० आर० की रिपोर्ट पर अलग से बहस के लिये मौका दिया जायगा।

मेरे पहले माननीय समर गुहा जी ने इस बात को रखा है। लेकिन मैं आज आरोप करना चाहता हूँ कि ए० के० सरकार पर दबाव डाल कर मूल रिपोर्ट को बदला गया है और वाइश वाश करने का काम हुआ है। और इन्हीं को आपने बिड़ला इनक्वायरी दी है। तो इस तरह की जांच के बारे में मेरे मन में बहुत सन्देह है। आपको मालूम है कि हल्दिया-बरोनी पाइप लाइन के बारे में पहले श्री ए० के० राय को नियुक्त किया। हम लोगों ने उसका विरोध किया और सरकार को कबूल करना पड़ा कि श्री ए० के० राय को नहीं करना चाहिये था। बाद में श्री श्रीनिवास राव की कमेटी बनी। आज इस तथ्य को मैं सामने ला रहा हूँ और चाहता हूँ कि श्री ए० के० सरकार को बिड़ला इनक्वायरी न सौंपी जाय, और इस मामले की पूरी जांच की जाय और सदन को सारे तथ्यों से मंत्री महोदय अवगत करायें। अगर इनको खुद पता नहीं है तो स्वयं शिक्षा मंत्रालय की बहस को वह स्थगित करायें।

यह मूल रिपोर्ट मैं आपकी इजाजत से सदन की टेबिल पर रख रहा हूँ।

**समापति महोदय :** मेरी बात आप पहले सुन लें। अभी बहस हो रही है, माननीय समर गुहा ने भी इस चीज को रखा है, और जिनको बोलना होगा, जो रखना चाहेंगे वह अगर कोई बात इस सिलसिले में रखेंगे, उन सबके

[सभापति महोदय]

बाद मंत्री महोदय आपको जवाब देंगे।

**श्री मधु लिमये :** तुरन्त पहले जवाब दें।

**सभापति महोदय :** तुरन्त जवाब देने को मैं नहीं कह रहा हूँ। आपकी बात को मंत्री जी नोट कर लेंगे और जब वे अपना जवाब देंगे तो उसमें इस बात का भी जवाब दे देंगे। अभी मैं इसको ओवररूल करता हूँ।

**श्री मधु लिमये :** मैं टेबुल पर इस रिपोर्ट को रख दूँ।

**सभापति महोदय :** जब स्पीकर साहब परमीशन देंगे तब यह टेबुल पर रखा जायेगा। वैसे आप सबमिट कर दीजिये लेकिन जब स्पीकर साहब देख लेंगे और परमीशन देंगे तब टेबुल पर रखा जायेगा।

**श्री प्रकाशवीर शास्त्री (हापुड़) :** इसमें एक बात और कहना चाहता हूँ। मेरा निवेदन यह है कि जो चीज मधु लिमये और समर गुहा जी ने उठाई है, यह इसलिये और भी गम्भीर हो जाती है कि पूरी रिपोर्ट तैयार हो जाने के बाद जब सरकार के पास आई तो जिन महानुभाव के खिलाफ यह रिपोर्ट थी, उन्होंने चेयरमैन को लिखा कि मैं अपनी सफाई देने के लिये कमेटी के पास आना चाहता हूँ। तो या तो सदस्यों ने किसी तरह उसको लीक आउट किया और पहले डाइरेक्टर जनरल के पास वह रिपोर्ट पहुँची या फिर शिक्षा मंत्रालय से रिपोर्ट उनके पास गई और उसके बाद उनको सफाई देने के लिये बुलाया गया और उसके बाद रिपोर्ट बदली गई और उसकी संक्षिप्त रिपोर्ट तैयार की गई, जब कि सच्चाई यह है कि ये वे महानुभाव हैं जिन्होंने यहाँ से ट्रांसमीटर कच्चा लोहा और खराब लोहा कह कर बेच दिये और हैदराबाद के अन्दर वह ट्रांसमीटर पाकिस्तान को खबरें भेजते हुए पकड़ा गया। यह सारी चीजें होम

मिनिस्ट्री के पास हैं और सारे का सारा रहस्य इन पहले डायरेक्टर जनरल के खिलाफ है। इस तरह से वैज्ञानिक अनुसन्धान विभाग के खिलाफ इतना बड़ा षडयन्त्र हो और उसको शिक्षा मंत्रालय दबाये? इसलिये मैं चाहता हूँ कि अध्यक्ष के आसन से इस बात की व्यवस्था करें कि पूरी रिपोर्ट आनी चाहिये और उस पर विचार होना चाहिये और जो महानुभाव इस तरह से देश के साथ षडयन्त्र कर रहे हैं, उनका पर्दाफाश हो।

**सभापति महोदय :** जो आपने सवाल उठाया, उसका जो जवाब होगा, वह नोट करके आप लोगों को बता देंगे और उस वक्त अगर कोई असंतोष होगा तो आप इस बात को उठाइएगा। अभी मैं श्री लिमये द्वारा उठाई गई बात को ओवर रूल करता हूँ। टेबुल पर रखने की जो बात है, वह स्पीकर की परमीशन से ही रखी जाएगी। (व्यवधान)

श्री अंबाजागन।

**श्री समर गुह :** ए० के० सरकार सेक्रेटरी के सिगनेचर भी इस पर हैं।

**सभापति महोदय :** मेहरबानी करके उनको बोल लेने दीजिये (व्यवधान)

\*SHRI ANBAZHAGAN (Tiruchengode): Mr. Chairman, Sir, when I rise to express my views on behalf of Dravida Munnetra Kazhagam on the Demands for Grants of Union Education Ministry, I am happy to say that a Tamil knowing Edveatist is the Minister of Education in the Centre. When I say that he knows Tamil, I would like to make it clear to my hon. friends coming from different constituencies in various States that he knows many other languages also. Though they may not be aware of his broad-mindedness, impartiality and his ability to function dispassionately, I expect that they will come to realise these qualities in him in course of time.

\*The original speech was delivered in Tamil.

So far as the Central Government is concerned, I am not be inclined to accept that only a Hindi-knowing person can be the Minister of Education. But if it leads to a situation that a person knowing Hindi only should be the Minister of Education and if such a person without any knowledge of any other language begins to head the Education Ministry, then, I have to state with regret that with his bias towards Hindi it is not possible for him to give the respect and importance naturally due to other languages of the country.

After going through the reports of the Ministry I have to charge this Government that, for twenty-two years after Independence, they have been administering this country without a full sense of responsibility, often advancing the argument that since education has not found a place in the Union List of the Constitution it is not within their sphere of administration and as the State List contains this subject, it is the sole responsibility of the State to administer education as to achieve the goal.

In his reply to the Debate last year on the Demands for Grants of the Education Ministry, the Education Minister had pointed out that the reason for the failure in fulfilling the constitutional obligations to the peoples of providing free and compulsory education to children up to 14 years and also the peoples' right to get education was the responsibility of the State Governments which had not discharged their duties properly. The Minister has stated that no "inducement" or "encouragement" on his part to make the State Governments realise their obligation was possible. He had further amplified his statement that he could neither, give them any incentive nor induce them but all that he could do was to persuade or appeal to them. If he tries to extricate himself by putting forth this plea that education is the problem to be tackled by the State Governments, I would say that he will be placing himself in a vulnerable position of being accused as derelicting his constitutional obligations.

The Directive Principles of State Policy enumerated in the Constitution have no doubt

to be implemented through administrative programmes formulated by the States, but the ultimate responsibility of veering the burden rests squarely on the Central Government. Whatever may be the Directive Principles, whether it is Prohibition or upliftment of backward classes, scheduled castes and scheduled tribes or giving free and compulsory education to children up to 14 years, the degree of responsibility imposed on the Central Government does not vary; the Central Government have to bear full responsibility for implementing all the Directive Principles of States Policy, with equal intensity.

I feel that the Central Government could not give deep thought to the problems of education, as they were, all these years, concentrating on political power and domination, and as to how to retain their political sway. Wherever education has made some progress, democratic instincts among the masses have been fostered. Where adequate attention has not been paid to educational development or for raising the standard of education, we find that democracy has to face many a hurdles. Taking, for example, the case of West Bengal, I would not subscribe to the theory that only because of the hold of certain political parties on the people there the people have taken to violent agitations. Though the West Bengal can boast of eminent educationists, and even though the people are highly conscious of their political rights, yet on account of the fact that the standard of education has been allowed to decline for years and they could not get, even after 20 years of Independence, free primary education, the atmosphere is affected and subjected to frequent violent eruptions.

Whether it is Calcutta University or any other University nearabout, there is widespread student unrest and turmoil. They don't hesitate to deface even the memorials of Mahatma Gandhi. I would not accuse the students only in spite of the fact that they indulge in such emotional upsurges. I would not also find fault with the political parties which exploit the innocence of the students for their own ends. I would only say that the Congress Party, which had ruled the State for 18 long years,

[Shri Anbazhagan]

did not exert enough for the growth of education in the State, thereby providing a climate unwittingly for the students and youths to divert their energies in disdainful activities.

I would accuse the party which was in power earlier of gross negligence of educational development in West Bengal.

Though the first and foremost aim of education is not to develop the individual personality ; it is not the end. It is not only the development of the intellect : it is not to make him accept the responsibilities of democratic way of life. Further education is an instrument in making him to stand by and to strengthen the socialistic society in future. As pointed out yesterday by an hon'ble Member of the Congress organization and today by a Member of the Swatantra Party, the reason for a majority of the people of our country being denied of their right to get even this basic primary education is the failure of the Government in not imparting elementary education to all children, in not spreading adult literacy widely and in not providing universal education among the masses.

The Central Government are not prepared to bear the huge expenditure involved in this. In our annual Budget Estimates, we are not even allocating 3% of the total revenue for education. I pity the Education Minister for his role, even accepting that 3% has been provided for Education in the Budget, out of this of Rs. 58 or 60 crores is the total amount allotted for primary, secondary and university education. Education like an orphan is entrusted to the care of the poor Education Minister. A child which will not survive even with the best of medical attention is handed over to him for giving the necessary treatment. The Doctor is there, but no medicine. The mother is holding the baby but there is neither milk for the baby nor food for the mother. This kind of attitude in allocating funds for education must be changed. If that is to be done, those in power in the Central Government must own their constitutional responsibilities.

Do they feel that they must directly involve

themselves in educational development by taking over education from the States? Do they think that they are not engaged in the service of education by merely making allocations and offering financial assistance to the States? I would like to state without any doubt in my mind it is the inevitable duty of the Centre to allocate funds and offer financial aid to the States for education. I hope it might not be argued that in the Draft Fourth Plan an amount of Rs. 1217 crores was planned to be spent on education which is also cut in the revised Fourth Plan to only Rs. 840 crores. Many hon. Members have expressed with disgust that even this is a only a paltry sum in comparison with the gigantic task.

Here, I would like to point out that in the annual Budget amounting to Rs. 295 crores, of my State Tamil Nadu as much as Rs. 68 crores have been allocated for education, which comes to about 23 to 24%. Many times the State Government has allocated 25% of their Budget for education. Some other States also have allocated 20% of their Budget for education. If the Central Government earmarked only 3% for education, can they raise the standard of education or spread the education universally or make education an instrument in solving the problems faced by the people? Really speaking, in the next ten years, we may have to impart education to nearly 25 crores of children. The Central Government must realise that it is not only a stupendous responsibility but also a duty cast on the Central Government. If the Central Government take shelter under the plea that education is in the State sector and the States must look after it, I would say that a time may come when there would be no sanctity to the Directive principles of State policy enshrined in the Constitution. Just as in the case of Prohibition, which is being implemented in full only by Tamil Nadu and Gujarat Governments and no where else because of the refusal of the Central Government to compensate their financial loss, a situation may arise where the State Governments may not care to implement the educational policy.

In countries like Great Britain and USA,

they earmark 7% or 6% of their Budgets for education. As their resources are not meagre like ours and as they are greatly advanced in industry and production, their allocations for education are 100 or 150 times as that of ours. By allocating a small amount we wish to make progress in education. Even if their Governments do not invest money in education, they have progressed to the extent that private sector alone can pay adequate attention to the growth of education. We are yet a backward country. Though we are imbued with a desire to develop, and progress we still remain only as a developing country. Our people have to look to education in an environment of poverty and backwardness. I would appeal with strong hopes to all the hon. Members of this House to make a concerted, ceaseless effort for increasing the allocation of funds for education. The Central Government cannot claim to be a socialist Government as long as they do not augment the allocation for education. If that is not possible, let them confess that they are socialists and they have no faith in socialism. If they persist in their professions of socialism, let them come forward to increase five times the present allocation of 3%, that is to say, make it 15% of the Budget, for education which is the primary right of the common people. Not only that. If the Government desire to create a country-wide faith and awareness in socialism, they must endeavour to see that the people in rural areas also acquaint themselves of the tenets of socialism. In rural areas people of older generation may be illiterate. If you want even those rural people to appreciate the socialistic way of life, though the elders may not have had education, you must ensure that at least their wards are given the facility for educating themselves. To achieve this, the Central Government must increase the allocation substantially.

The Central Government must encourage the States in their implementation of educational programmes. If a State Government comes forward to spend from their own funds more than 20% of their annual Budget on education—whatever may be the excess amount whether it is 8 or 10 crores of rupees—the Central Government must accept to meet 50% of the additional expenditure, over and above

the fixed norm, say 20% allocation. The Central Government must give this incentive or inducement in the form of financial grant. Then alone the educational programmes will prove beneficial to the community at large and not become a deception on the people.

I would now refer to the series of Commissions and Committees appointed by the Government—Radhakrishnan Commission, Mudaliar Commission, Kothari Commission, Committee of Members of Parliament. Though they have reviewed education thoroughly, and have submitted valuable reports we have not met with success in implementing and attaining the objective. The basic reason for that is that none of these Commissions in their terms of reference had any objective as to what is possible to be accomplished in a fixed period of five or ten years. They stated only the ideal as to what is good to be attempted. Free and compulsory education to children upto 14 years is an ideal and an injunction imposed on the Government for achievement within a certain period. In some States, Compulsory and free education has not been provided to children even upto 11 years. You may have eminent educationists on these Commissions. In many fields, we have not succeeded because they have not made any realistic approach to verify the situation and how it could be improved in another five or ten years, with the resource availability.

And Further, the work of the National Council of Educational Research and Training has become the laughing stock and has attracted the condemnation from every side. The Committee under the chairmanship of Shri Nag Chowdhary has submitted its report in which it has analysed in detail the drawbacks and inadequacies of this Institution. I would not like to refer to the various criticisms of the Committee here. If that report is to be thrown in the dust-bin of the Ministry, why should you appoint a Committee at all? No body cares to investigate the allegations made by any Committee appointed to go into the working of any Institution. This is not the exclusive prerogative of the Education Ministry it is the general malady of the Government of India. This malady catches even the education expert

[Shri Anbazhagan]

after his induction in office. Whatever may be the Report, no action is taken on them. Today, the N.C.E.R.T. is an institution blamed for a series of scandals, but it goes on merrily.

I would like to refer to one of their activities in particular. The N.C.E.R.T. engaged itself in implementing the National Science Talent Search Scheme with a view to arresting the brain drain of our country. This is a laudable effort in the right direction by which the country could get the services of the future eminent scientists and technologists and prevent them from emigrating to western countries for better prospects. Under this scheme, children having scientific aptitude and talent are selected; financial assistance is given to them so that they can progress in the field of their special aptitude. This scheme is in force for the past four years. It would have been really a service to the community at large, if children in rural areas having aptitude for science had been selected for this benefit. The student selected gets for a period of five years financial assistance to the tune of Rs. 10,000 to Rs. 20,000. 350 to 400 scholarships are given under this scheme. In this, in 1965, 30 students out of every 100 were selected from Delhi; in 1966-67 it was 30; in 1967-68 it was 42. The percentage of students from Delhi is 42%. West Bengal got 10, 14 and 20 in those years. From Tamil Nadu only four per cent, were selected. If I were to be more specific, I would ask whether this opportunity is to be extended only to students from capital cities like Delhi, Bombay, Calcutta and Madras. Can we accept the claim that scientific talents could be located only in these cities? I would even argue that these people living in capital cities have greater approaches and influences to avail such benefits. It looks that this scheme is implemented only for influential section of the people. In 1968, 350 students were selected. Out of 350, 99 came from Delhi, 54 from West Bengal, 28 from Maharashtra, 30 from Kerala, 16 from Madras and only 3 from Andhra Pradesh. For Andhra Pradesh it is not even 1%, for Tamil Nadu it is not even 5%. But for Delhi it is about 33%. Is this the way that we are following the principle of equality of opportunity in

the country? With this kind of partisan attitude in implementing public welfare schemes, the people get disillusioned with the Government. They are neither able to appreciate the good intentions of the Government nor its avowed objectives.

Mr. Saraf visited a Model school at Ranchi namely Netarhat School and presented his report on the grand achievements of this school. The report has been forwarded to us by the Education Minister. This school has got all the amenities and discipline which a public school offers. An amount of Rs. 4 is spent on food alone per student. In many of our villages, a family of 10 members does not get Rs. 4 for their food. Even a teacher does not get Rs. 4 a day for his family. Further this school the student-teacher ratio is 1 : 12, whereas in ordinary schools elsewhere it is 45 to 60 students per teacher. If you take into account the time to be spent by the teacher on the supervision of a student and also to attend to his domestic chores, in ordinary schools the teacher-student ratio will come to even 1 : 100. In this respect I do not consider that it will be useful to brag about the achievements of this wonderful school; it is like the flower which blooms once in a blue-moon. I would stress that we cannot take much advantage of such a solitary achievement, or feel satisfied with such rare specimen.

The Central Government must come forward to stretch a helping hand and necessary incentives, financially and otherwise, to the State Governments to achieve the aims of universal education. They should find ways and means to the allocation for education.

Next I would refer to the fact that in all the Central Schools, the respective regional languages are not taught. Regional language does not find a place in the curriculum of Central Schools. When a demand is made for including the regional language in the Central School curriculum, I do not know the reason why the Education Minister should feel that this is a knotty problem and refuse to yield to our president demand, Tamil Nadu Government has time and again requested.

the Central Government to introduce regional languages also in the Central Schools. It is enough if you appoint a single teacher for this purpose. Apart from the students who have the regional language as their mother tongue other students whose mother-tongue is different but who desire to learn the regional language can have the opportunity to study the regional language. The Central Government are advancing a curious argument that the State Government should meet 50% of the salary of this teacher and the remaining 50% be met by the students, who wish to learn the language. This only reveals the scant respect shown by them to regional languages. They also put forward an argument to camouflage the opposition to the imposition of Hindi—and the demand to equal treatment to all the regional—national languages in the country that southern languages are also taught in the schools of Haryana and Uttar Pradesh. According to me, it is a meaningless argument. On the contrary, the regional languages of the area must find a place in the Central School in whichever region it may be located. This will help not only the students of the region who have that regional languages as their mother-tongue, but also the children of officers hailing from Hindi region or from Bengal or from Gujarat, if they want to learn the local language.

On account of the fact that the N. C. E. R. T. is located in Delhi, their efforts in raising the standard of secondary education have not proved a success in different States. When any scheme is undertaken to improve the standard of education, it must be done in consultation and in coordination through some special committees appointed for this purpose by the Universities and the respective State Governments if it is to be effective. Similarly, the financial assistance extended for publishing translated and original works in regional languages should be routed through Universities. This is accepted by the hon. Education Minister in the Conference of Vice-Chancellors. If this procedure is adopted, then the drawbacks and the lacunae which are there now will be done away with. The regional languages also will find their

legitimate place in the educational development of the country in this transitional stage and crucial period. We will be able to bring out good text-books to meet the need of the children and utilise it fully well.

I request the hon. Education Minister to initiate fruitful programmes, keeping this new approach in mind. With these words, I conclude my speech.

SHRI A. S. SAIGAL (Bilaspur) : I may inform the hon. Member who has just spoken in Madhya Pradesh, in the secondary higher education board examinations, in Tamil, Telugu, Kannada and Bengali, in all these subjects, papers are set and the students are entitled to sit in those examinations. (Inter-ruption).

SHRI SHIVA CHANDIKA PRASAD (Jamshedpur) : That is being done in Bihar also.

श्री नरदेव स्नातक (हायरस) : सभापति महोदय, अभी आपके सामने बहुत से हमारे माननीय मित्रों ने शिक्षा तथा युवक सेवा मंत्रालय के नियंत्रणाधीन अनुदानों की मांगों के ऊपर बोलते हुए अपने विचार रखे हैं ...

सभापति महोदय : बोलने वाले माननीय सदस्य मेहरबानी करके एक बात का ध्यान रखें। चूंकि इस पर बोलने वाले बहुत हैं और हम चाहते हैं कि इस गम्भीर व महत्वपूर्ण विषय पर सबको समय मिले इसलिये माननीय सदस्य निर्धारित समय के भीतर ही अपना भाषण समाप्त करने की कृपा करें।

श्री नरदेव स्नातक : आज कोई भी ज्ञानवान व्यक्ति अच्छी तरह समझता है कि किसी भी राष्ट्र की उन्नति के लिये संस्कृति परमावश्यक है और संस्कृति का मूलाधार भाषा है। भाषा के बिना कोई भी राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता। जब यहां अंग्रेजी राज्य था उस वक्त इंगलिस्तान का एक शिक्षाशास्त्री लार्ड

[श्री नरदेव स्नातक]

मेकाले 1830 से लेकर 1833 तक इस हिन्दु-स्तान में रहा और उसने अपनी शिक्षा पद्धति का निर्माण किया, इस देश के लिये वह चाहता था कि हिन्दुस्तानी रंग रूप से पक्के रंग के हैं, रंग रूप से हिन्दुस्तानी बने रहें पर वेश भूषा से विचारों से, भावनाओं से, भाषा से और दूसरी सारी चीजों से अंग्रेज बन जायें। उसने जिस प्रकार की शिक्षा पद्धति उस वक्त देश को दी वह सब से लेकर आज तक, डा० बी० के० आर० बी० राव के मंत्रित्व-काल तक इस देश में चल रही है।

आप जानते हैं कि हमारे बहुत से साधियों ने पूरी व्याख्या कर दी कि वर्तमान शिक्षा पद्धति कितनी दूषित है, कितनी खराब है और उसको तत्काल बदल देना चाहिए, आमूल चूल परिवर्तन कर देना चाहिये। और यह हो सकता है। बहुत से लोग कहते हैं कि यह बहुत अच्छी शिक्षा पद्धति है। उसने बहुत सी अच्छी चीजें दी हैं। मैं उनसे कहना चाहता हूँ कि सब चमकने वाली चीजें सोना ही नहीं होती हैं, पीतल भी हो सकती हैं। जो मेकाले की शिक्षा पद्धति आज यहां चल रही है अब भी उपयोगी है, यह मैं मानने के लिये तैयार नहीं हूँ। क्या जो प्राचीन शिक्षा पद्धति गुरुकुलों की या विद्यापीठों की थी वह हम को इसीलिये प्रिय नहीं है कि वह प्राचीन है, ऋषियों और मुनियों की दी हुई है, पुराने शिक्षा शास्त्रियों की दी हुई है। आज की शिक्षा पद्धति जो चमकने वाली जैसी चीज है, चाहे वह पीतल ही क्यों न हो बहुत अच्छी है? मैं समझता हूँ कि हमारा कोई साथी इसको मानने के लिये तैयार नहीं होगा और न देश का कोई समझदार व्यक्ति इसको मानेगा।

आज इस देश को आजाद हुए बाईस वर्ष हो गये। इन बाइस वर्षों में शिक्षा के लिये क्या हुआ? हम देखते हैं कि शिक्षा के ऊपर इतने

दिनों तक कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया, उसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। सिर्फ थोड़ा सा कलेवर अथवा ऊपर का ढांचा ही बदला है और जो चीज अंग्रेजों के राज्य से चली आ रही थी शिक्षा के सम्बन्ध में आज भी वही मौजूद है। हमारे कुछ भाई कहते हैं कि अंग्रेजी आवश्यक है। महात्मा गांधी ने, जो हमारे देश के राष्ट्र पिता थे, अपने भाषण में कहा था कि हमको ब्रिटिश लोगों से कोई नफरत नहीं है, अंग्रेज हमारे भाई हैं, मानवता के नाते वह हमारे भाई हैं, परन्तु मैं उनकी अंग्रेजियत से, उनकी भाषा से नफरत करता हूँ। यदि आपके पास पुस्तकें नहीं हैं जिससे आप शिक्षा दे सकें, तो मैं इतना कह सकता हूँ कि कुछ दिनों के लिये आप अपने स्कूल और विश्वविद्यालय बन्द कर दें। पहले आप अपनी पुस्तकें तैयार कर लें हिन्दी भाषा में अथवा प्रादेशिक भाषाओं में, उसके बाद आप उनके द्वारा लोगों को शिक्षित करें। परन्तु दुःख इस बात का है कि हम अब भी जहां के तहां बने हुए हैं। कोई परिवर्तन देखने को नहीं मिल रहा है।

आज कहा जाता है कि अंग्रेजी भाषा समृद्धिशाही है और अन्य सारे देशों में उनका बड़ा भारी प्रचार है, उसके बिना कोई काम कहीं पर नहीं चल सकता है। सारा विज्ञान और सारी टेकनालोजी अंग्रेजी में है। मैं पूछना चाहता हूँ कि रशिया में क्या हुआ? क्या वहां पर भी कोई अंग्रेजी भाषा की टेकनालोजी और विज्ञान की पुस्तकें हैं? परन्तु सही बात यह है कि विज्ञान के मामले में रशिया से बड़ा कोई नहीं है। जिस वक्त जारशाही का अन्त हुआ 1917 में, रूस के सामने केवल दो बातें थीं। एक शिक्षा और दूसरी कृषि, उन्होंने कहा कि अगर हम देश को आगे बढ़ाना चाहते हैं तो हमको सबसे पहले दो चीजों पर ध्यान देना होगा। उन्होंने शिक्षा की तरफ ध्यान दिया

और उनका देश शिक्षा के सम्बन्ध में सबसे आगे है। कृषि के मामले में भी वह आत्म-निर्भर हो गया। कहने का तात्पर्य यह है कि अगर कोई यह कहे कि अंग्रेजी के द्वारा ही सब चीज की जा सकती है, तो यह गलत है।

आज हमारे देश का इतिहास इस बात का साक्षी है कि हजारों साल पहले हमारे यहां विदेशी आया करते थे। किसलिये? केवल वशंन करने के लिये नहीं, शिक्षा और विज्ञान की भाषा और संस्कृति चीजों को सीखने के लिये आते थे और अपने देश में जाकर उसका प्रचार करते थे। आज दुर्भाग्य यह कि हिन्दुस्तान के लोग अमरीका जा रहे हैं, इंग्लैंड जा रहे हैं, योरोप के दूसरे देशों को जा रहे हैं डिगरियां लेने के लिये क्योंकि हम समझते हैं कि हम अशिक्षित हैं, मूर्ख हैं, कुछ समझते नहीं हैं क्योंकि हम हिन्दी भाषा ही जानते हैं या अपने प्रदेशों की भाषा जानते हैं, जिनका दुनिया में कोई मूल्य नहीं है।

आज हिन्दुस्तान में अंग्रेजी पढ़े लिखे लोग कितने हैं? 1 या 2 प्रतिशत। उन्हीं का शासन है चाहे सेंट्रल गवर्नमेंट में हो चाहे प्रान्तीय सरकारों में हो। उनमें ऊपर से नीचे तक सभी अंग्रेजीदां लोग हैं। वे नहीं चाहते कि हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा हिन्दी हो। हालांकि संविधान ने सर्वसम्मति से तय कर दिया है कि हिन्दी इस देश की राज भाषा होगी क्योंकि बहुसंख्यक लोग उसको बोलने वाले और समझने वाले थे, फिर भी आप जानते हैं कि पन्द्रह वर्ष के बाद भी क्या परिणाम निकला इन पन्द्रह वर्षों में ज्यादा से ज्यादा अंग्रेजी ही चली।

जिस समय तुर्की से विदेशी सत्ता चली गई उसके बाद वहां का शासक कमाल पाशा बना उसने अपने देश के शिक्षा-शास्त्रियों और विद्वानों को इकट्ठा किया तथा उनसे पूछा कि

यदि हम अपने यहां से अंग्रेजी को हटा दें तो क्या होगा? अगर हम अपने देश की कोई भाषा, राज भाषा बनाकर सरकारी कामकाज को चलायें तो यह हो सकता है? सारे शिक्षा शास्त्रियों ने कहा कि सरकार चलाना कठिन होगा। अंग्रेजी को दस, बीस या पच्चीस वर्ष तक रहना चाहिये। हम नहीं चाहते कि अंग्रेजी हमेशा ही बनी रहे लेकिन इतने समय तक तो रहना ही चाहिये। पर आप जानते हैं कि उस शासक कमाल पाशा ने क्या कहा था? उसने कहा, जब वह निर्णय देने के लिये खड़ा हुआ, कि मैंने आप सबकी बातें सुन लीं। आप चाहते हैं कि 10, 20 या 25 वर्ष तक अंग्रेजी भाषा, विदेशी भाषा रहे राज भाषा के रूप में, सरकारी काम में, लेकिन मैं इसको मानने के लिये तैयार नहीं हूं। मेरा भाषण समाप्त होने के बाद उसी क्षण से इस देश की राष्ट्रभाषा अपने देश की भाषा होगी और उसी में सारा सरकारी कामकाज होगा, और वह हुआ भी। लेकिन हमारा दुर्भाग्य है कि चाहे हमारी प्रादेशिक सरकारों के या केन्द्रीय सरकार के व्यक्ति हों, सब कहते हैं कि अंग्रेजी के बिना हमारा कोई काम नहीं चल सकता। संसार में केवल दो देश हैं, हिन्दुस्तान और इंग्लिस्तान जहां पर अंग्रेजी की बात चलती है, और किसी देश में नहीं चलती। अन्य देशों में अपनी-अपनी भाषा द्वारा कार्य है और अपनी ही भाषा में सरकारी काम काज भी होता है।

दुर्भाग्य की बात है कि हमारे शिक्षा मंत्रालय के मंत्री जी और अन्य साथी तथा शिक्षा मंत्रालय में काम करने वाले जो कार्यकर्ता हैं वह सोचते हैं कि सब ऐसा ही चलता रहेगा। जो सेक्रेट्री हैं वह किसी न किसी तरह से नेताओं और मिनिस्ट्रों को बहका लेंगे और संसद् सदस्यों को भी समझा लेंगे और अपनी पुरानी लीक पर चलते रहेंगे। मैं आपके माध्यम से मंत्री जी से कहना चाहता हूं कि

### [श्री नरदेव स्नातक]

आप बहुत बड़े विद्वान हैं और आप चाहते हैं कि शिक्षा के अन्दर कोई परिवर्तन हो, आमूल चूल परिवर्तन हो इस लिये आपका यह कर्तव्य हो जाता है कि वर्तमान शिक्षा पद्धति में परिवर्तन किया जाय। इस ओर प्रयत्न किया गया तो उसका परिणाम क्या हुआ ? आप रोजाना देखते हैं कि स्कूलों में परीक्षायें हो रही हैं, वार्षिक इम्तहान चल रहे हैं, वार्षिक परीक्षाओं में हम देखते हैं कि खूब नकल होती है। जब कभी कोई नकल करते हुए पकड़ा जाता है और उसको रोका जाता है तब वह छुरा निकाल लेता है, और घोंस दिखलाता है। ऐसे मौकों पर मर्डर भी हो जाते हैं। कत्ल भी हो जाते हैं। यू०पी० और बिहार में आये दिन इम्तहान के समय ऐसा हो रहा है। साल में 11 महीने विद्यार्थी लोग आराम से इधर उधर के कार्यों में समय गुजारते हैं और एक महीने में अथवा 20 दिन में नोट्स वगैरह लेकर या इम्पाटेंट चीजें ढूँढ कर इम्तहान देने की कोशिश करते हैं। इस लिये मुझे आप से कहना है कि आपको परीक्षा प्रणाली में परिवर्तन करना होगा। बिना इस परिवर्तन के आपका काम नहीं चल सकता। आज विद्यार्थी नकल कर के डिगरियां ले लेते हैं। इससे कुछ नहीं होगा। मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि जिस समय बच्चा विद्यालय में प्रवेश करता है उस समय भी वह अपने मां बाप पर आश्रित रहता है और जब डिगरी लेकर बाहर आता है तब भी मां बाप पर आश्रित रहता है क्योंकि वह पुस्तक शिक्षा तो प्राप्त कर लेता है लेकिन उसके पास और कोई चीज नहीं होती। वह समझता है कि पहले नकल करके पास हो जायेगा, उसके बाद अपने मां बाप के खर्च से डिगरी लेने के बाद ऐसे आराम करेगा मेरा कहना है कि कुछ वाणिज्य की शिल्प की, कला कौशल की शिक्षा भी आप दें और केवल पुस्तकीय ज्ञान ही लोगों को न दें। इस प्रकार से किया गया तो शिक्षा का जो उद्देश्य है,

उसको आप प्राप्त कर सकेंगे।

अब मैं संस्कृत के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूँ। संस्कृत को सारी भाषाओं की मां कहा जाता है, जननी कहा जाता है। लेकिन आज उसकी हालत क्या है ? संस्कृत की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है। तीन हजार से भी ज्यादा संस्कृत की पाठशालायें हैं, संस्थायें, गुरुकुल आदि हैं, विद्यापीठ हैं लेकिन उनको आर्थिक अनुदान बहुत ही कम दिये जाते हैं। दो, चार या दस बीस लाख रुपया और ज्यादा से ज्यादा हुआ तो पचास लाख रुपया ही उनको अनुदान देने के लिए रखा जाता है। तीन हजार संस्थाओं को पचास लाख रुपया अनुदान के तौर पर देना उसी तरह से है जैसे ऊंट के मुँह में जीरा। इससे कुछ नहीं बनता है। संस्कृत जो कि सभी भाषाओं की जननी है, उसके प्रचार और प्रसार की तरफ आपको ज्यादा ध्यान देना होगा।

चौबी योजना में आपने शुरू-शुरू में 1210 करोड़ रुपया शिक्षा के लिये रखा था जोकि कुल राशि का सात प्रतिशत था। बाद में इसको आपने घटा दिया और कह दिया कि प्रान्तीय सरकारें इसको करेंगी, हमारा इससे कोई मतलब नहीं है। काट कर तब इसको आपने 840 करोड़ कर दिया जोकि 5.8 होता है। यह बहुत ही थोड़ा पैसा है जो शिक्षा के लिये आप रख रहे हैं। इससे अच्छे परिणामों के निकलने की आशा नहीं की जा सकती है। आप बिल्डिंग पर, नहरों पर, सड़कों पर, बांधों पर, कल कारखानों पर अरबों और खरबों रुपया खर्च करते हैं तो क्या कारण है कि जहाँ मानवों का निर्माण होता है, मनुष्यों का निर्माण होता है, वहाँ आप ज्यादा पैसा खर्च नहीं करते हैं ? मानवों का निर्माण करने में आप पैसा ज्यादा खर्च करें तभी राष्ट्र का और देश का भला

हो सकता है। मैं चाहता हूँ कि वित्त मंत्रालय तथा योजना आयोग से आप ज्यादा से ज्यादा पैसा शिक्षा के ऊपर खर्च करने के लिये लें। आपने जो योजना रखी थी, उसके लिये पूरा पैसा आपको लेना चाहिये। बल्कि मैं तो कहूँगा कि उससे भी ज्यादा पैसा आपको लेना चाहिये।

गुरुओं को, प्रोफेसरों को, टीचर्स को बहुत ही कम पैसे दिये जाते हैं। उनका दर्जा देश में सबसे ऊँचा है। कितना ऊँचा है, इसकी एक मिसाल मैं आपके सामने रखना चाहता हूँ। सिकन्दर महान और उसके गुरु अरस्तु एक नाव से नदी पार कर रहे थे। नाव जब नदी के बीच मझघार में पहुँची तो मल्लाह ने कहा कि नाव डूबने वाली है और आप दोनों में से कोई एक उतर जाये तो वह बच सकती है। जब सिकन्दर कूदने के लिये तैयार हो गया तो अरस्तु ने कहा कि यह तुम क्या कर रहे हो। उसने कहा कि इसलिये मैं कूद रहा हूँ कि आप हमारे आचार्य हैं और मैं आपका शिष्य हूँ और मेरा कर्त्तव्य है कि गुरु की रक्षा करूँ। शिष्य की तो कोई बात नहीं, उसको अगर कुछ हो जाता है तो उसकी कोई बात नहीं। गुरु ने कहा यह नहीं हो सकता है, तुम्हारा रहना बड़ा जरूरी है। सिकन्दर ने कहा क्यों नहीं हो सकता है? अगर आप चले जाते हैं तो एक अरस्तु पैदा हम नहीं कर सकते हैं और अगर आप रहते हैं तो एक सिकन्दर तो क्या अनेकों सिकन्दर आप पैदा कर सकते हैं। यह दर्जा है जो गुरुओं का सदा से ही हमारे देश में भी रहा है, आचार्यों का, ऋषियों का, महर्षियों का रहा है। लेकिन आज उनकी कोई इज्जत नहीं है, उनको कोई पूछता नहीं है। उनको कम से कम पैसा दिया जाता है और जब वे ज्यादा की मांग करते हैं तो कहा जाता है कि हमारे पास पैसा नहीं है और हम इससे अधिक नहीं दे सकते हैं।

**सभापति महोदय :** इस तरह से नहीं चल

सकता है। आपको जितना समय दिया जाये उसी में आपको समाप्त करना चाहिये। चौदह मन्बर आपके बोलने वाले हैं।

**श्री नरदेव स्नातक :** मैं तो अभी दस मिनट ही बोला हूँ।

**सभापति महोदय :** आप पन्द्रह मिनट बोल चुके हैं।

**श्री नरदेव स्नातक :** मैं एक मिनट में सत्म कर देता हूँ।

मैं चाहता हूँ कि शिक्षा मंत्रालय ज्यादा से ज्यादा पैसा लेकर हिन्दी के प्रसार और प्रचार, संस्कृत के प्रसार और प्रचार के काम में उसको लगाये। साथ ही साथ शिक्षा पद्धति, शिक्षा प्रणाली में भी वह जरूर परिवर्तन करे। ऐसा अगर किया गया तो हम अपने देश के लोगों का सही तौर पर निर्माण कर सकेंगे।

हमारे कुछ साधियों ने कहा है कि हम लोगों को साक्षर बनाने में अभी तक कामयाब नहीं हुए हैं। लोगों को साक्षर बनाना भी बहुत जरूरी है। इस हेतु मैं चाहता हूँ कि प्राथमिक और माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा अनिवार्य और निःशुल्क की जाये।

इन शब्दों के साथ मैं शिक्षा मंत्रालय की अनुदान की मांगों का समर्थन करता हूँ।

**श्री शिव कुमार शास्त्री (अलीगढ़) :** सभापति महोदय, अभी तक शिक्षा के जो परिणाम निकले हैं उन से जो शिक्षा का उद्देश्य है, उसकी पूर्ति नहीं हुई है। शिक्षा का उद्देश्य मुख्य रूप से यह है कि मनुष्य मनुष्य बने। वह डाक्टर बने या न बने, वैज्ञानिक बने या न बने लेकिन मनुष्य अवश्य बने। अगर वह मनुष्य बनता है तो शिक्षा सार्थक है। अब तक के परिणामों को यदि देखा जाए तो वे बहुत ही निराशाजनक हैं। जो नियम-

## [श्री शिव कुमार शास्त्री]

निष्ठा उनमें होनी चाहिये, मर्यादाओं का जो उनको पालन करना चाहिये, सच्चरित्रता और ईमानदारी जो उनमें होनी चाहिये, अब तक जो स्नातक स्कूलों और कालेजों में से निकले हैं। स्वतंत्रता के पश्चात्, उनमें अधिकतर ऐसा देखा गया है कि इन गुणों का अभाव ही रहा है। उनके व्यवहार को देख कर बहुत बड़ी निराशा ही हाथ लगी है। हम में से प्रायः सभी का अनुभव है कि छात्र तोड़फोड़ करते हैं; प्रत्येक प्रकार के दोष भी उनमें पाए जाते हैं, यहां तक कि चोरियों और डकैतियों तक में भी वे पकड़े गए हैं। इस तरह की चीजों पर जब हम विचार करते हैं और यह भी देखते हैं कि कल को भारत के शासक भी वे ही बनने वाले हैं, सूत्रधार वे ही बनने वाले हैं, तो बड़ी निराशा होती है। परिणाम यह है कि देश बहुत दुर्बल होता जा रहा है और पतन को ओर जा रहा है।

एक बार मैं गाड़ी में जा रहा था। कालेज के कुछ छात्र उछल कर पहली श्रेणी के डिब्बे में आ गए। वे आपस में कुछ बातचीत करते रहे। लेकिन आगे चल कर कुछ आपस में कहने लगे कि कई बार मेरा विचार यह हुआ है कि बायरूम में जो शीशा लगा हुआ है, उसे निकाल कर ले जाऊं, पर न जाने क्यों रह जाता हूँ। फिर एक दिन मैं ऐसे डिब्बे में चढ़ा जिसमें कोई शीशा नहीं था, न बायरूम में और न बैठने के कम्पाटमेंट में। यह सब हमारे शिक्षित लोगों के कारनामों का परिणाम है। इस वास्ते इस ढांचे में परिवर्तन की आवश्यकता है। यों तो परिवर्तन की ध्वनि और आवाज प्रारम्भ से ही सुनाई पड़ रही है लेकिन उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता है।

मैं आपके सामने शिक्षा का उद्देश्य क्या होना चाहिये और उसका प्रकार क्या होना चाहिये, यह प्राचीन शास्त्रों के आधार पर थोड़ा

सा वर्णन करना चाहता हूँ। पहली बात तो यह है कि शिक्षा हमारी पाठशालाओं में जाकर प्रारम्भ नहीं होती है बल्कि पहला शिक्षक समाज का, माता है। दूसरा शिक्षक पिता है। स्कूल का हेड मास्टर तो तीसरा मास्टर है, उसका नम्बर तीसरा आता है। लेकिन आज जब कोई शिकायत करता है बच्चों की उच्छ्वलता की तो माता से नहीं करता है, पिता से नहीं करता है बल्कि वह स्वयं जा कर अध्यापक से कहता है, उसी से जा कर पूछता है। मैं एक प्रमाण देना चाहता हूँ कि पहले शिक्षक का कितना महत्व है और दूसरे का कितना और तीसरे का कितना लिखा गया है :

उपाध्यायान् दशाचार्य आचार्याणान्तु शतं पिता ।  
सहस्रान्तु पितृभ्राता गौरवेणातिरिच्यते ॥

साधारण अध्यापक जितना पढ़ाता है उससे दस गुना आचार्य शिक्षा दे सकता है। सौ आचार्य मिल कर एक बच्चे को जितनी शिक्षा और योग्यता दे सकते हैं, पिता यदि विद्वान हो और पढ़ा लिखा हो तो वह स्वयं अपनी सन्तान को उतनी शिक्षा दे सकता है। माता यदि विदुषी हो और सन्तान की शिक्षा की ओर ध्यान दे तो अकेली इतनी शिक्षा और योग्यता बच्चे को दे सकती है जितनी एक हजार पिता दे सकते हैं।

अब दूसरी दृष्टि से आप तुलना करें। माता की शिक्षा एक ओर और एक हजार पिताओं की शिक्षा एक ओर, माता की शिक्षा एक ओर और दस हजार आचार्यों की शिक्षा एक ओर और माता की शिक्षा एक ओर और एक लाख साधारण अध्यापकों की शिक्षा एक ओर। इस ओर जो ध्यान दिया जाना चाहिये था वह भी नहीं दिया गया। सरकार परिवार नियोजन के ऊपर जोर देती रही है। वह भी आवश्यक चीज है।

लेकिन इसके साथ ही यह वायु-मंडल भी उत्पन्न करना चाहिए कि जहां कम सन्तान उत्पन्न हो, वहां माता-पिता अपने बच्चों को सुसंस्कृत और योग्य बना कर ही शिक्षणालयों और गुरुओं के चरणों में भेजें।

17 hrs.

माता-पिता का काम एक पात्र को बनाने का है और गुरु का काम उस पर चित्रकारी और पालिश करने का है। यदि पात्र में कोई निर्माणगत त्रुटि रह गई है, उसकी रचना में ही कोई कमी रह गई है, तो फिर चित्रकार चाहे जितनी चित्रकारी या पालिश करता रहे, जहां वह पात्र टेढ़ा या चपटा है, वहां वह टेढ़ा और चपटा ही रहेगा, वह त्रुटि दूर नहीं हो पायेगी। इसलिए शिक्षकों में पहले नम्बर पर माता, दूसरे नम्बर पर पिता और तीसरे नम्बर पर आचार्य है। आचार्य का कार्य केवल अक्षर पढ़ना ही नहीं है। उसके लिये शास्त्रों में कहा गया है : "आचार्यः पूर्वरूपं शिष्य उत्तर रूपम्।" आचार्य का पहला काम यह है कि अपने शिष्य को चरित्रवान, ईमानदार और सच्चा बनाये और उसके बाद वह इस प्रकार की शिक्षा दे, जिससे वह संसार में अपना कारोबार कर सके, अपनी आवश्यकताओं को पूरा कर सके। अगर वह यह काम करता है, तभी वह आचार्य होता है।

आज-कल हमारे शिक्षणालयों में यह भी न्यूनता है कि आचार्य यह अपेक्षा करते हैं कि हमारे विद्यार्थी बहुत अच्छे बनें, लेकिन वे स्वयं अपने जीवन को अच्छा नहीं बनाना चाहते हैं। लेकिन जब तक वे स्वयं अच्छे नहीं बनेंगे, तब तक उनके शिष्य भी अच्छे नहीं बन सकेंगे। इस बारे में भी शास्त्र में एक बहुत बढ़िया बात कही गई है : "विद्यासन्धिः प्रवचनं सन्धानम्"। आचार्य अपने शिष्य को जैसा देखना चाहता है, वैसा उसको खुद बनना होगा, तभी शिष्य उत्तररूप होगा, विद्या-संधि होगी और प्रवचन-सन्धान होगा।

यदि हमारे शिक्षा के ढांचे में इस दृष्टि से परिवर्तन किया जायेगा, तभी हमें देश के जीवन और वातावरण में कोई परिवर्तन दिखाई देगा।

जहां तक शिक्षा के माध्यम का प्रश्न है, शिक्षा का माध्यम वह भाषा होनी चाहिए, जिसको बच्चे प्रारम्भ से समझते हैं। इसीलिए यह निश्चय किया गया कि शिक्षा का माध्यम बच्चों की मातृभाषा हो, अर्थात् जो भाषा उनके घर में बोली जाती है, वही शिक्षणालय में भी प्रयुक्त हो, ताकि उनके मस्तिष्क पर यह दोहरा बोझ न पड़े कि वे विषय को भी समझें और भाषा को भी समझें। यद्यपि शिक्षा मंत्रालय ने कई बार कहा है कि यह निश्चय कर लिया गया है कि शिक्षा का माध्यम प्रांतीय भाषायें, मातृभाषायें होंगी, लेकिन अभी तक ऐसा हो नहीं पाया।

संस्कृत भाषा के प्रति हम सभी का अनुराग है, लेकिन वह त्रिभाषा फार्मूले के अन्तर्गत आ कर सैंडविच बन गई है और उसका कचूमर निकला जा रहा है। यद्यपि मंत्रालय की ओर से हर समय संस्कृत के प्रति हमदर्दी प्रकट की जाती है, लेकिन वह स्थिति वैसी की वैसी है। शायद यह समझा जा रहा है कि संस्कृत सुरक्षित है, लेकिन संस्कृत विनाश के कगार पर खड़ी हुई है। यदि सरकार इस बारे में परिवर्तन नहीं करेगी, तो संस्कृत पिस जायेगी। यह हमारी वह पुरानी धाती है, जिसको दासता के समय में भी, यहां के निर्धन और तपोधन ब्राह्मणों में शिक्षा मांग कर भी, अभी तक सुरक्षित रखा है। पुराने समय में राजा और महाराजा पाठशालायें खोल कर संस्कृत को संरक्षण देते थे। हमारे सेठ लोग भी क्षेत्र और भोजन का प्रबन्ध कर के संस्कृत को प्रश्रय देते थे और पुस्तकों की व्यवस्था करते थे। किन्तु आज वह सब ढांचा बदल चुका है। वे राजा नहीं रहे। सेठों के पास

[श्री शिव कुमार शास्त्री]

चाहे सम्पत्ति हो, लेकिन उनके घरों में अंग्रेजी पढ़ी-लिखी औनाद आ गई है, जिसको संस्कृत के प्रति निष्ठा या श्रद्धा नहीं है।

इसलिए यह सारी जिम्मेदारी अब राज्य के ऊपर है, शिक्षा मंत्रालय के ऊपर है और उसको अपनी जिम्मेदारी को पूरी तरह निभा कर संस्कृत की रक्षा करनी चाहिए।

एक प्रश्न के उत्तर में मंत्री महोदय ने बताया है कि सरकार ने आगामी योजना में संस्कृत के प्रचार और प्रसार के लिए 255 लाख रुपया रखा है। उसमें से गुरुकुलों के विकास के लिए 35 लाख रुपया, केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपती, के लिए 15 लाख रुपया और श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली, के लिए 25 लाख रुपया रखा गया है। इस सम्बन्ध में और भी वर्णन दिया गया है। लेकिन मैं यह कहना चाहता हूँ कि सारे गुरुकुलों और पाठशालाओं के लिए सरकार 50 लाख रुपया देती है और श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ के लिए वह 25 लाख रुपया देती है। सरकार को विचार करना चाहिए कि हमारे गुरुकुल और छोटी छोटी पाठशालायें कितना काम कर रही हैं। सैकड़ों छात्र वहाँ से आचार्य और शास्त्री बन कर निकलते हैं। लेकिन दिल्ली के इस विद्यापीठ की उपलब्धि क्या है?

सरकार का बहुत कठिनाई से जुटाया हुआ रुपया इस शिक्षण संस्था में बर्बाद हो रहा है। इसके एक निदेशक हैं, जो अपनी मिसाल आप हैं। उनकी दूसरी कोई उपमा नहीं है। वह इस प्रकार के व्यक्ति हैं; जिन्होंने राजस्वान विश्वविद्यालय को बोखा देकर एम० ए० से पहले पी० एच० डी० कर लिया। वह एक वर्ष में एम० ए० हो गये, जब कि और लोग दो दो वर्ष धिपटते रहते हैं। उन्होंने ऐसा

चमत्कार कर दिखाया।

कलकत्ता में एक संस्कृत सम्मेलन हुआ, जिसके लिए कलकत्ता से एक लाख रुपया इकट्ठा हुआ। उस सम्मेलन के पश्चात् 70, 75 हजार रुपये की राशि बची। जब उनसे पूछा गया कि इस राशि का क्या उपयोग करेंगे, तो उन्होंने कहा कि संस्कृत सम्मेलन का भवन बनेगा। लेकिन बाद में उन्होंने बताया कि उस राशि को उससे भी उपयोगी कार्य में व्यय किया गया है। इसलिए यह देखना चाहिए कि वह 75 हजार की राशि विद्यापीठ के भवन में व्यय हुई है या संस्कृत सम्मेलन के भवन में। सम्मेलन के भवन का अस्तित्व कहीं नहीं है। इस जांच में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए, क्योंकि प्रधान मंत्री इस सम्मेलन के और मंत्री महोदय इस विद्यापीठ के प्रमुख हैं। मेहनत और परिश्रम से जुटाया हुआ सरकार का यह जो धन है, उसका सदुपयोग होना चाहिए।

समयाभाव के कारण मैं अपने सुझाव नहीं दे सकूंगा, लेकिन मैं यह कहना चाहता हूँ कि जब तक मंत्री महोदय शिक्षा के इस ढांचे में परिवर्तन नहीं करेंगे, तब तक यह देश बैसा नहीं बन पायेगा, जैसा कि वह इसको देखना चाहते हैं, क्योंकि अन्य सब मंत्रालय तो शरीर हैं, जिसमें प्राण-प्रतिष्ठा शिक्षा मंत्रालय करता है। अगर प्राण नहीं रहेंगे तो लाश का कोई लाभ नहीं है।

धन्यवाद।

SHRI VIKRAM CHAND MAHAJAN (Chamba): Mr. Chairman, Sir, there can be no two opinions that the educationists and the people who run the Education departments have failed the nation and the coming generations. There can be no two opinions also that they have failed to re-orientate the educational system to suit the needs of Independent India.

Not only this : Instead of helping in solving the problems facing the country the system of education that they have given has actually accentuated and aggravated those problems.

Sir, what are the problems which are facing this country ? The problems are—unemployment, the problem of modernising agriculture, the problem of having a better technician, scientist, a better artisan, a better industrialist and a better citizen. The present system of education, instead of helping to solve these problems has accentuated them. Not only this, Sir. Not only the present system of Education has imposed further burdens but it has developed regional tendencies ; instead of creating a tendency towards a united India. A combination of these educationists and the selfish politicians have developed the regional tendencies. Some of the politicians may possibly be for teaching more languages, but by the developing regional languages alone, we cannot improve the country. How can they help in the development of the country when they are not realising that they are wasting their time in teaching more and more languages—time which could be used in giving them practical training in agriculture, in industrial subjects and in creating better scientists ?

Our educational systems are now for teaching three or four languages to a child—regional language, foreign language, national language and if necessary, another language. By overburdening them with the languages, they cannot create better India. I can only say that they are actually sowing the seeds of disintegration of the country rather than uniting the country which can unitedly face any danger—foreign or internal danger.

The present system of education was developed by the Britishers for a particular need. They needed the servile classes of people who could be loyal to them and at the same time could look of superiority to their own countrymen. They created this system of education which created half-literate educated classes with bloated egos and considered their countrymen as inferior but looked at the Britishers as masters who were superior to them. And they tried to copy them in every respect. This can

be clearly evidenced from the fact that we have got import-mania. Everything that we have is imported. We think that this is better than what we have in our country. If a foreigner comes out from the foreign embassy or if a man from the foreign embassy goes out or if one visits the S. T. C. one finds people looking for imported cars. If a foreigner goes out we buy even his shirts or underwears. Import mania is basically developed among the Indians because of the educational system that we have. So, what we need to-day is an educational system which could solve our problems of unemployment. When we go back to our constituencies, what we find is every boy, whose parents are cultivating the lands, wants a job. And he wants it whether it is a class IV or Class III job. The basic problem is that our boys would not like to go to the fields. They would rather go in for a job for the whole of life for a sum of Rs. 110, 120 or 130. They would not like to come back to the fields. If they go back to the fields, perhaps, they could have earned much more. But the present system of education does not train them in that particular line. He is not trained in agriculture ; he is not trained in cottage industries and he is not given training to work in technical line. He rather prefers to go in for a white-collared job than to work in the fields. This educational system could be entirely revolutionalised and could also be changed entirely. Now a days the students are cramming different subjects and are not learning anything in improving farms. They devote their time to learn arts only. For example, in rural sector—in villages—if the students, instead of being made to cram three languages—are put on the practical aspect of agriculture and if their two-third's time is spent on agriculture or is devoted to learning cottage industries or is devoted to learning on how to repair the tractors, pumps or such machinery, we would have a revolutionalised India and there would be no problem of poverty at all. The problem of starving would go away. The entire country would change and the revolution would come in. The chief difficulty is that each educationist is a rubber stamp of his predecessor. A new educationist comes in ; a new Vice-Chancellor comes in and a new Minister comes in and he does not see what the country needs. He is

[Shri Vikram Chand Mahajan]

rubber-stamping the old system of education which we got from the British for meeting their own needs. The foreign power did not want our country to compete with them in trade and industry. In fact, they tried to kill our industry. They developed an educational system which did not teach these arts but killed them. That suited them, but the present educational system follows the same pattern without realising the present-day India's needs of an educational system with a new orientation which would suit our needs.

The object with which our agricultural universities were started was that they would create a class of citizens who would improve agriculture, but out of 100 graduates coming out of these agricultural universities, 95 are asking for jobs, not even 5 go to agriculture and take up farming as a career. What was the difficulty in bringing 80 out of 100 students from the farms and giving them education in the agricultural universities for at least one year, giving them stipend which could compensate them for the loss they suffer by coming to the university? If it had been done, they would have created a better class of farmers than the present graduates from the agricultural universities who, after a course of three or five years, look for jobs. What is the difficulty in giving five or seven acres of land to each agricultural graduate and putting him on the farm for at least ten years so that he puts his knowledge to practical use?

Similarly, take the engineering colleges. You have 40,000 unemployed engineers today. Why? Because you have not given them training in the practical aspect. You have given them an education which glorifies the services. In fact, the entire educational system of our country glorifies the services and denegates other independent professions. So, the time has come when we should entirely revolutionise our present educational system. The present unemployment problem can be completely solved in another five or seven years if we do not glorify the services or emphasise regional tendencies, if we do not waste twelve years of the life of young children in cramming.

Lastly, the present examination system is such that after the examinations we forget everything that we learnt. Most of the Members here are graduates. If you ask them ten questions on the subjects that they studied, I do not think any one of them can answer even one of the questions. What is the difficulty in changing the examination system? Let the students carry books with them and understand only the practical aspect. Once they become dishonest in the beginning of their lives, they will be dishonest throughout their lives. Therefore, I submit that the examination system should be changed.

I support the Demands of the Ministry.

SHRI JYOTIRMOY BASU (Diamond Harbour): I shall start by quoting an eminent educationist who has said: Education, not industry is the panacea. He further said that survival depends on higher education; for developing countries even more than the developed countries knowledge and know-how are the key to better life, not as an alternative to investment in economic project but as a priority item.... (An Hon. Member: who said so) Lord Butler.... Above all there is an imperative need to treat education as a national investment. Let us get a balance sheet from the Congress Government for the last twenty years.

The Education Commission report says: even after twenty years of independence and fifteen years of planning the education system in India designed to meet the needs of an imperialist administration continued to remain more or less in tact. Even now our educational system remains detached from production. What has been the result? Here are some significant observations from that report:

"Instead of promoting social and national integration and making an active effort to promote national consciousness, several features of the educational system to promote divisive tendencies; caste loyalties are encouraged in a number of private educational institutions. The rich and poor are segregated in schools, the former attending better type of private schools which charge

fees while the latter are forced by circumstances, to attend free Government or local authority schools of poor quality."

There has been deep intrusion of the foreign imperialist educational system into our educational system. There is collaboration in the field of education to the detriment of our interest. If you read the recent articles written in *Mainstream* you will be thunder struck by the inroads of academic imperialism.

I shall quote certain figures from international statistics for the percentage of literacy in the population aged 15 and over (males). Brazil—65 per cent, France 96.7, India—41.5 per cent, Japan 99 per cent, Mexico—70.2 per cent; Turkey, considered to be one of the backward countries—54.8, America—97.5, USSR 99.3 per cent—Shrimati Sangam Lakshmi Bai may take note—and Yugoslavia—90.1 per cent.

The total public expenditure on education as percentage of national income between 1960-62 is as follows: Germany 3.5, Japan 5.5, Egypt 4.7—a little earlier—USA 6.6 and USSR 6.1.

What has the Government done in 23 years? It is a Mahabarata. The Directive principle of our constitution expected that all children in the age group 6-14 will be covered by compulsory primary education by 1962. How has this provision been implemented? According to the Planning Commission, upto 1968-69 only 63 per cent of the children in the age group 6-14 would be going to schools. This appears in page 279 of the draft Fourth Plan. (1969-74). Further the percentage of children going to school in the rural areas is much lower than those in the urban areas. After all these failures, we expected now at least the planners would implement the constitutional directive by the end of the Fourth Plan. But the draft of the Fourth Plan gives us no such assurance. This is what it says.

In 1973-74, the enrolment in primary schools (classes I to V) under the age-group 6-11, in the middle schools (Classes VII to

VIII) under the age-group 11-14, and in the elementary schools (Classes I to VIII) under the age-group 6-14 will be not more than 85 per cent, 42.1 per cent and 60.9 per cent respectively.

Now, in regard to secondary education, (age-group 14 to 17), the enrolment in millions, in 1960-61, was 3.03; in 1965-66, 5.19; in 1968-69, 6.59. The percentage of age-group 14-17, was 11.1, 16.7 and 19.4 respectively for these years.

What about the university education? If I quote Mr. D. S. Kothari, if he is correct, the expenditure on education in India is only about two dollars for one student every year as compared to 300 dollars in the United States. Who has benefited most by the system of education that you have been giving? If I can quote Mr. J. P. Naik, Member-Secretary of the Education Commission in India, this is what he says:

"Who has benefited most from the expansion in education that has been achieved in the post-independence period and he replies:

"At the elementary stages, the weaker sections of the community still get very little benefit; then, enrolment is comparatively less and wastage greater....but from the very few studies available, it appears that the quality of educational opportunities provided at the secondary stage is far less than in the elementary stage....Secondary education is still very largely urban and boys still form the vast majority of secondary students. In a study of the Baroda district it was found that nearly three-fourths of the students belong to the three upper castes. In a similar study of the Khaira district, it was found that 80 per cent of the secondary school students belong to the three or four top castes while a backward caste, which accounted for about 60 per cent of the population of the district, had only four per cent of the enrolment at the secondary stage....At the university stage, more than 70 per cent of the seats are taken by the top five per cent of the social strata."

[Shri Jyotirmoy Basu]

Dr. Rao, I am quite sure, will take note of this state of affairs.

What have you done to the decaying eastern States including Calcutta and West Bengal? I am quoting from a letter which the Education Minister has written to me. It says:

"Primary education is in a deplorable state in West Bengal. Salaries of primary teachers are lower than those obtaining in most of the States of India. Primary education is free only up to Class IV (6-10) in rural areas only. Out of 89 municipalities, only 17 have introduced free primary education in their respective areas. In the big city of Calcutta, there is virtually very little arrangement for free primary education. Out of some 3,40,000 children of the age-group 6-11, 70,000 get the benefit of free primary education either in Calcutta Corporation's primary schools or in Government-sponsored free primary schools.

While in most of the States in Northern, Western and Southern regions, education has been made free up to Class VIII, in the States in the Eastern Region, it is not so, and West Bengal is one of those States in the Eastern Region.

To make education free up to Class VIII, we require an additional allotment of Rs. 9 crores, as it is the joint responsibility of the Centre and the State, they appealed to You,—the Prime Minister of India,—to help this problem-ridden State with a sum of Rs. 5 crores to enable it to make education free up to Class VIII."

Then, in West Bengal, free distribution of text-books in Bengali and Nepali for classes I and II was started. This should immediately be extended to students belonging to other language-speaking groups. For this purpose, they wrote to the Central Government to work as a clearing agent for the different States of India and in exchange of Bengali books to secure for them books in other languages like Urdu, Hindi, Tamil and Malayalam, etc. This matter has been shelved.

Then, the children of the political sufferers are allowed stipends; only one child of the political sufferer gets the stipend. They requested the Central Government to increase their quota of financial help so that this benefit could be extended without any restriction.

Sir, on the face of this disgraceful condition in the field of education, what have you done? I quote from Dr. Rao's Ministry.

They say, "Education outlay lowest ever". This is dated April 14:

"The allocation for education in the Fourth Five Year Plan is the lowest ever, according to the annual report of the Ministry of Education. This paucity of allocation will impede any vigorous drive to implement the national policy on education.... Education has been allotted a sum of Rs. 840 crores, i.e. 5.8 per cent of the total plan outlay. In the Central sector, the cut has not been much, the provision being Rs. 271 crores against the draft proposal of Rs. 326 crores. In the State sector, however, the reduction has been drastic—Rs. 569 crores against a draft figure of Rs. 884 crores. The axe has fallen very heavily on primary education in particular, generally on all programmes of qualitative improvement."

What a shameful thing:

"The report says that as the Constitution now stands, education is essentially a State subject."

What a wonderful way of shirking things!

"Despite the view in some influential quarters that education should at least be a concurrent subject."

It is also ridiculous that the number of centrally-sponsored schemes in the field of education, according to the new policy is to be eliminated or suitably reduced. The Government of India can operate an educational policy only on the strict constitutional basis! This is what the report says. You are all great devotees of the Constitution. When it is a question of collection of funds from States, you forget

everything. About giving them, you are very shy. This is a strange thing.

On the base of this, you are maintaining a huge establishment. Education is a State subject, you say. Hence the Government should explain the necessity for maintaining a huge administrative apparatus at the Centre with 207 officers including Secretaries, Additional Secretaries, Joint Secretaries, Deputy Secretaries 6, Joint Educational Advisers 3, Under Secretaries 20, Deputy Educational Advisers 10 etc. The number of such officers will go up from 189 in 1968-69 to 270 in 1970-71. Then, your love for IAS officials in the field of education ! Why is it that you have selected an IAS officer to be Director of Education in Delhi ?

I come to teachers' status. Education is carried by teachers. What have you done to improve the teachers' status ? I quote from the Education Commission's report :

"In the post-independence period, continuous efforts have been made to improve the remuneration of teachers at all levels and schemes for this purpose have figured prominently in all the plans. But the net results achieved have not been adequate, particularly in respect of primary school teachers.

In some sectors *e. g.* pre-primary, the increase in the cost of living has been greater than in remuneration. On the whole, there was some improvement in the remuneration of teachers in real terms upto 1960-61. This has since been completely neutralised by the sharp increase in prices that has taken place in the last two or three years. This has, we are afraid, adversely affected the morale of teachers."

How do you expect the teachers to go on teaching without getting at least two meals a day ?

We see a big and pompous Yoga Ashram on Pant Marg. The Education Ministry has given them more than Rs. 6½ lakhs. About the other ministries, the answer has not been given. They have funds for all these things. The

Works Housing Ministry have given two acres of land for this yoga ashram.

Look at the nepotism that they practise. The post of the Director of the National Museum fell vacant in 1968. The Union Public Service Commission selected a person. But, I am told, a former Governor, Miss Padmaja Naidu, came and requested the Prime Minister to grant extension to a retired and superannuated Director. As a result of that, this man who has been selected by the UPSC for the post of Director of the National Museum, has not been appointed and the whole thing has been shelved and this superannuated man is being groomed for occupying the position by extension of his service by two years.

In the Lal Bahadur Shastri Rashtriya Sanskrit Vidhya Peeth the controversial Director is still continuing. Nothing goes well in this country.

About the CSIR I demand a full-fledged enquiry on the subject because a lot of things have been mentioned and we are also in possession of some facts.

In the Calcutta National Library the position is deteriorating. The man does not pull on well with his staff and there is demoralisation among the staff. So the National Library is going down in grade and in service.

We demand that at least 10 per cent of the Union budget should be ear-marked for education ; at least 10 per cent of the Plan allocations should be made on education ; at least 6 per cent of the national income should be spent on education. The Union Government should bear 60 per cent of the expenses on primary and secondary education. The same responsibility should be borne in respect of technical education for its improvement. There should be no curtailment of opportunities for vocational education. The UGC and the Union Government must take the responsibility for improving the condition of the non-teaching staff of educational institutions. The Union Government should take special responsibility for women's education in the country through

[Shri Jyotirmoy Basu]

sponsored schemes or specific increased financial aid for women's education.

I will conclude by asking: will the hon. Education Minister tell us what proposals he has to offer us with regard to giving special assistance to those States which have not done so well during the Congress rule of the last 20 years and those who are lagging behind? What assistance does he propose to give to those five eastern States, namely, UP, Bihar, Assam, Orissa and West Bengal, which have been neglected during the last 20 years of dreadful Congress rule?

**श्री मणिमोई जे० पटेल (दमोह) :** माननीय सभापति जो, मैं माननीय मंत्री का ध्यान कुछ महत्वपूर्ण बातों की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। बहुत से माननीय सदस्यों ने अपने-अपने विचार यहां रखे। मैं यह निवेदन करना चाहता हूँ कि इस देश के अंदर प्लान्ड एजुकेशन होनी चाहिये। अभी तक शायद इस पर किसी का विचार नहीं आया है। किसी भी चीज की बुनियाद होती है, पहले विचारधारा होती है फिर उस पर विचार करने के बाद उसके टेक्नीशियन्स बुलाये जाते हैं और एक प्लान बनाया जाता है, ब्लू प्रिन्ट होता है, उसके बाद मकान तैयार होता है। हमारे देश के अन्दर मैं जहां तक समझता हूँ प्लान्ड एजुकेशन नाम का कोई ऐसा प्लान नहीं है कि हमें अगले वर्ष, 1971, 1972, 1973, 1974, 1975, पांच वर्षों के लिये कौन-कौन विषय में किन-किन प्रकार के कितने व्यक्तियों की जरूरत है। इस पर कभी नहीं सोचा गया। 1952 से लेकर 1957, 1962 और 1967 तक तीन पंचवर्षीय योजनाओं में केवल बजट के रूप में रुपया मंजूर किया गया और वह जहां तहां इधर उधर खर्च किया गया। मगर यह प्लान नहीं बनाया कि एक वर्ष के अन्दर हमको कितने वकील चाहियें, किनने डाक्टरों की जरूरत है,

मेडिकल डाक्टरों के अलावा कितने एग्रीकल्चर के डाक्टरों की जरूरत है प्रोफेसर्स की कितनी जरूरत है, ग्रेजुएट्स को कितनी आवश्यकता है, साइटिस्ट्स की कितनी आवश्यकता है, रेडियो मेकर्स को कितनी आवश्यकता है और इंजीनियर्स की कितनी आवश्यकता है।  
(व्यवधान)

इसके अलावा हमको एक बात यह कहनी है कि रसा में मास्कू के अन्दर मास्को युनिवर्सिटी में 45 किस्म की भाषाओं का विद्याभ्यास किया जाता है और जिसको जिस भाषा का ज्ञान प्राप्त करना होता है, वह कर सकता है। भारत के अन्दर दिल्ली और बम्बई में ऐसी व्यवस्था है, बाकी प्रान्तों में ऐसी व्यवस्था नहीं है। भारत के दूसरे प्रान्तों में अगर कोई दूसरी भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना चाहे तो उसके लिए कोई व्यवस्था नहीं है। आपके पास ऐसी कोई प्लान नहीं है जिससे वहां पर यह चीज हो सके और उन लोगों को उसका लाभ मिल सके। अगर आप कोई इस तरह की प्लान नहीं बनाएंगे तो वही स्थिति होगी जैसी कि 70 हजार इंजीनियर्स आराम-शोक फरमा रहे हैं।

अब मैं प्राइमरी एजुकेशन के बारे में कुछ कहना चाहता हूँ। प्राइमरी एजुकेशन एक बहुत ही इम्पोर्टेंट चीज है परन्तु इस देश के अन्दर जो रिजर्वेटेड लोग हैं उनको ही तीस-तीस, चालीस-चालीस और पचास-पचास रुपये में भरती कर लिया जाता है और वे ही पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी, पांचवी, छठी और सातवीं कक्षाओं में बच्चों को पढ़ाते हैं, जिससे कोई सुधार नहीं होता है। मैं आपको बताऊँ कि ट्रस्कन में पाइनियर पैलेस की संस्था है जिसके अन्दर ढाई वर्ष से लेकर अठारह वर्ष के बच्चों को मनोविज्ञान के तरीके पर विद्याभ्यास दिया जाता है, परन्तु इस देश के अन्दर

ऐसी कोई संस्था नहीं है कि जहाँ पर प्राइमरी एजुकेशन के लिए आप ढाई तीन वर्ष के बच्चों को लोवर के० जी० और अपर के० जी० में विद्याभ्यास के लिए भेज सकें और जहाँ पर बच्चे मनोविज्ञान के अनुसार शिक्षा ग्रहण कर सकें। टीचर्स का जो सलेक्शन होता है, उसे मैं बिल्कुल पसन्द नहीं करता हूँ क्योंकि जो रिजेक्टेड आदमी होते हैं, उन्हीं को रख लिया जाता है। मैं तो यह चाहता हूँ कि जो विद्यार्थी फर्स्ट क्लास फर्स्ट आए या जो फर्स्ट स्टुड करे, उसे ही केवल प्राइमरी एजुकेशन के लिए टीचर की जगह मिलनी चाहिए, दूसरे लोगों को नहीं मिलनी चाहिए क्योंकि यही फाउण्डेशन है। अगर फाउण्डेशन ठीक है तो मकान ठीक बनेगा वरना नहीं। इसलिए मेरा कहना यह है कि रिजेक्टेड क्लास को हटा कर प्राइमरी एजुकेशन के लिए आप उन्हीं लोगों को टीचर्स नियुक्त करें जो कि फर्स्ट क्लास हों। जैसा कि मैंने पहले भी कहा है कि पाइनियर पैलेस जैसी संस्था इस देश के अन्दर निर्माण करने की आप कोशिश कीजिए।

अभी कुछ सदस्यों ने बताया है कि कुल बजट का बहुत कम हिस्सा एजुकेशन पर खर्च किया जाता है और प्रति व्यक्ति के हिसाब से वह दो डालर के करीब आता है। जहाँ विद्या है, वहाँ प्रकाश है, जहाँ प्रकाश है वहाँ ज्ञान है और जहाँ ज्ञान है, वहाँ सरस्वती हैं और वहाँ पर सब कुछ है।

**एक माननीय सदस्य :** जहाँ सरस्वती हैं वहाँ लक्ष्मी हैं।

**श्री मणिभाई जे० पटेल :** आपके मुँह में धी शक्कर।

अब मैं एडल्ट वीमेन्स एजुकेशन के बारे में कुछ कहना चाहता हूँ। इस देश में एडल्ट जेन्ट्स एजुकेशन की व्यवस्था है मगर एडल्ट

वीमेन एजुकेशन की व्यवस्था नहीं है। मैं आप का ध्यान इस विषय में आकर्षित करना चाहता हूँ कि जिस देश की प्रधान मन्त्राणी एक नारी हों और सारी दुनिया में जिनका नाम हो, वहाँ एडल्ट वीमेन एजुकेशन के लिए इस बजट के अन्दर कोई उचित व्यवस्था नहीं है। इस बजट के अन्दर कोई ऐसी बात नहीं बताई गई है जिससे एडल्ट वीमेन एजुकेशन को बढ़ावा मिले। इसलिए मैं चाहता हूँ कि इस पर ज्यादा से ज्यादा ध्यान दिया जाए ताकि वीमेन एजुकेशन बड़ी अच्छी हो सके।

इसके बाद मुझे एक बात की शासन से शिकायत भी है और वह यह है कि 1952 से लेकर 1957 तक, 1957 से लेकर 1962 तक और 1962 से लेकर 1967 और 1967 से लेकर 1970 तक जितनी राशि केन्द्रीय शासन ने मंजूर की एजुकेशन के लिये, उसमें अधिक से अधिक मध्य प्रदेश, क़ैराला, हैदराबाद, पंजाब, बंगाल, यू० पी० और जम्मू कश्मीर सारा पैसा ले गये और मध्य प्रदेश को ज्यादा नहीं मिला (व्यवधान)। मिला जरूर है लेकिन उसके साथ सौतेली मां जैसा व्यवहार किया गया है। मेरा कहना यह है कि मध्य प्रदेश के साथ सौतेली मां का जैसा बर्ताव किया जा रहा है। मुझे शासन से बड़ी भारी शिकायत है। जैसे माननीय सदस्य कहते हैं कि एक व्यापारी है तो वह चक्रवृद्धि ब्याज मांगता है तो गलत नहीं मांगता। ब्याज नहीं दे सकते तो हमें मुद्द रकम ही दे दीजिए। 1952 से लेकर जितनी रकम आपने मध्य प्रदेश को कम दी है वह पूरी कर दीजिये, उसके बाद हम आपसे ब्याज मांगेंगे।

आपने बड़ी कृपा करके मुझे बोलने का समय दिया है। कम से कम ढाई-तीन वर्ष से मैं 25 बार बोलने के लिये नोटिस दे चुका हूँ, मुझे समय नहीं मिला। आप एक माननीय

[श्री मणिभाई जे० पटेल]

सभापति आकर बैठे हैं, आपने मुझे पहली बार समय दिया, वह भी तीन मिनट के टाइम में से कुछ सेकेंड्स लेना चाहते हैं, कृपा करके थोड़ा समय और दीजिये।

सभापति महोदय : आपको 7 मिनट हो गये हैं।

श्री मणिभाई जे० पटेल : मैं यह कहना चाहता हूँ कि हमारे साथ में, मध्य प्रदेश के शासन के साथ जो अन्याय हो रहा है, वह न हो। यूनिवर्सिटीज के लिये जितना पैसा आप खर्च करते हैं, उसके बाबजूद भी कई जगह पर मकानों का ठिकाना नहीं है, कहीं पर फैंकल्टीज का ठिकाना नहीं। सागर यूनिवर्सिटी को 1947 में डा० हरिसिंह गोड़ ने अपने 90 लाख की प्रापर्टी में से दो तिहाई हिस्सा दे दिया था। उस वक्त हमने माननीय पंडित जवाहर लाल नेहरू का निमंत्रण दिया। वह पचारे, और उन्होंने कहा कि सागर तो एक माकूल जगह है। यूनिवर्सिटी ग्रांट्स कमिशन के कुछ दूसरे प्रोफेसर आये, उन्होंने भी कहा हिन्दुस्तान की यूनिवर्सिटीज में सागर यूनिवर्सिटी की जगह सबसे अच्छी है। डा० राधाकृष्णन वहाँ पर आये, उन्होंने भी यह कहा कि अच्छी जगह है। यहाँ पर जिनने राष्ट्रपति हुए उनमें से दो-तीन राष्ट्रपति वहाँ आये उन्होंने भी यह शब्द कहे। सागर विश्वविद्यालय का नाम क्या है—सागर। सारे विश्व में उसका नाम है। लेकिन वहाँ फैंकल्टीज कितनी हैं दो-चार। इसलिए मैं कहता हूँ कि आप इधर-उधर टुकड़े करके न बांट दें। मध्य प्रदेश के लिये जितनी यूनिवर्सिटीज के लिये आपने जितना पैसा खर्च किया उस यूनिवर्सिटीज के लिये उतनी फैंकल्टीज जब तक पूरी नहीं होती, तब तक कोई ठिकाना नहीं। अगर घर में सारा सामान एक साथ हो तो रसोई बन सकता है। अगर

सारा सामान बिखरा हो, चमचा एक जगह कटोरे दूसरी जगह हैं, पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण में, तो कहीं भी ठिकाना नहीं। एक जगह रहेगा तो ठीक रहेगा। मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि जितना भी पैसा आप यूनिवर्सिटीज पर खर्च करते हैं तो कंसट्रिटेड माइंड से कीजिये, एक जगह पूरा खर्च कीजिये। कम से कम एक जगह एक चीज तो तैयार हो जाये। यहाँ तो कहीं का काम नहीं होता है, इसमें सारा हिसाब गड़बड़ हो जाएगा।

स्वतंत्रता से पहले हमारे देश में 3 प्रतिशत ग्रेजुएट्स थे, 8 प्रतिशत केवल दस्तखत करना जानते थे और 89 प्रतिशत लोग अनपढ़ थे। बीस साल के अन्दर 3 प्रतिशत से लेकर 33-40 प्रतिशत इस देश में एजुकेशन हुई है, यह सराहनीय है। दुनिया के इतिहास में, किसी देश में यह नहीं हुआ। यू० एन० ओ० में 109 देश हैं, उसमें कहीं भी, किसी एक देश में इतनी तरक्की एजुकेशन में 20 साल के अन्दर हुई हो, ऐसा इतिहास नहीं मिलेगा। इसके लिये मैं शासन को धन्यवाद देता हूँ। अभी माननीय सभापति महोदय, मैं बहुत थोड़ा बोला हूँ। जो आपने समय दिया, उसके लिये आभारी हूँ।

SHRI BARROW (Nominated-Anglo-Indians): Mr. Chairman, Sir, the educational picture is depressing. The whole educational system is haunted by the phantom of fear. Soon, not late, the paralysis of fear will irrevocably cripple the educational organism. Students are afraid of examinations and unemployment; teachers and invigilators are afraid of students; vice-chancellors are afraid of students and teachers and the policy-makers are afraid of taking bold decisions. The whole system is caught in this spectre of fear.

The worst decision that has been taken has been to cut the Plan outlay from Rs. 1,210 crores to Rs. 840 crores. This cannot be

condemned in too strong language. Milton in one of his most striking lines condemned the bishops of his time for the failure to provide spiritual succour to their flock. I say that condemnation, with a greater force, applies today to our policy-makers and, I say, with deep regret, this condemnation is greater indeed because the person who is at the head of policy-making is a woman and a mother. Milton's indictment was "The hungry sheep look up and are not fed." Our children are going to be condemned to educational starvation.

The tragedy is that the Ministry has made up its mind that the cut is going to be in primary education and programmes of qualitative improvement. The position becomes very much worse if we consider wastage and stagnation at the primary and middle school levels.

I would like to quote from the recent study carried out by the NCERT, "Wastage and Stagnation in Primary and Middle Schools in India". The study shows that out of 100 pupils enrolled in grade I, 39 drop or stagnate in grade I, 11 in grade II, 8 in grade III and IV, 7 in grade V, 3 in grade VI and 2 each in grades VII and VIII. The study goes on to say that the rate of stagnation and wastage has remained constant both at the primary and middle stages of education during the past 10 to 12 years despite the continuing rise in per pupil expenditure.

Besides the tremendous loss in human energy and effort, if we work this out in terms of money, we find that during the last 12 years wastage and stagnation in grades 1 to 5 has resulted in a loss of at least 220 crores. I am basing my figures on this study. It says: "Assuming Rs. 26.9 is the average annual cost per pupil in primary schools, it is estimated that in 1957-58, Rs. 11.51 crores were spent on pupils who did not proceed from grade I to II; in 1958-59, the amount spent on pupils who did not proceed from grade II to grade III was Rs. 3.32 crores; in 1959-60, it was Rs. 2.16 crores on pupils who did not proceed from grade III to grade IV and in 1960-61, it was Rs. 1.94 crores on pupils who did not proceed from grade V to grade VI. Thus, the wastage

for four years works out to approximately Rs. 75.36 crores. In the last 12 years, it is no less than Rs. 220 crores for these 5 grades. If you add to this, the stage at the middle stage, the wastage at the secondary stage and the wastage at the university stage, the total amount will be the amount that has been sanctioned in the next Five Year Plan in the Central Sector. Sir, as a developing nation, as a poor nation, can we afford this tremendous, colossal, waste of energy and funds? This study has pinpointed and identified the areas and the causes of wastage. I would like to know from the hon. Minister what he intends doing to reduce this wastage or to eliminate it.

One of the things that my hon. Friend, Shri Jyotirmoy Basu highlighted is that the hon. Minister always takes the plea that the constitutional responsibility for primary education rest with the State Governments. One of the first things that happens when a Minister is inducted into the Cabinet is that he is initiated into the game of "passing the buck." It is an old game "passing the buck", and Dr. V.K.R.V. Rao is no mean pupil, in fact, I think, he is an apt pupil. I hope he will not tell me that this is a State responsibility and that he cannot do anything about it.

Then, the report here laments that the "axe has fallen heavily", and I can hear Dr. Rao like the lady of shallor, saying, "The course has come upon me", to carry out the next Five Year Plan in Education. But why does the Report go on to say that the axe has fallen heavily on qualitative programmes? I think when there is shortage of funds, it is necessary that our qualitative programmes should be given high priority.

Dr. V. K. R. V. RAO: That is done by the States.

SHRI BARROW: So, once again, the Minister is saying exactly what I said he would—it is done by the States. Where does the Centre come in? (*Interruptions*) The Centre must have a positive and leading role in initiating qualitative programme. Will any State

[Shri Barrow]

say 'No' to the Central Minister, if he says, 'I will take 50 schools and 50 colleges and make them in quality institution'? No State will say 'No' if the Centre goes to the States and there are 3000 colleges in the country. Let the Centre take 50 or 60 colleges and make them quality institutions. Take 500 primary schools and make them quality institutions. Do the same with the secondary schools. I say this qualitative improvement must be carried out by the Centre. Let there be selection of institutions for qualitative improvement. Here I say that if this is done, let the admissions to these schools be based on merit and talent only. In fact, let these selected institutions be institutions for the under-privileged. I am connected with schools which are always criticised as being citadels of privilege. Here is an opportunity to create quality schools at the primary level, at the secondary level and to create quality colleges. Let the admissions be for those meritorious and talented students who are under-privileged. I would like to see the scheme of scholarships extended in University education. Let our Universities be filled with scholarshipholders as in USA and UK. If others want to have university education, let them go to other colleges, but let the colleges in which public money is used, be for under-privileged meritorious and talented students.

Art. 45 of the Constitution casts an obligation with respect to primary education. It casts no obligation with regard to secondary and university education. What happens every year is that in the early summer the *Kōel* with its melodious voice says that summer is there, later in the summer my friends on this side in not so melodious notes cry stridently for Government to open new colleges, so that every student who gets 40% marks must be given admission. This opening of new colleges must be stopped. My friend, Mr. Fakhruddin Ali Ahmed, who was here a little while ago has not been able to produce a cheap car, but we have through the Education Ministry learnt to produce cheap colleges with poor buildings, poorer teachers and shoddy equipment. In these we pretend to purvey higher education, it is neither higher nor education. I would say that we require a

bold decision, to stop further opening of any such institutions.

Let us concentrate on vocational education. I know that technical and vocational education has failed to solve the unemployment problem: we have thousands of engineers unemployed. We have thousands of technicians unemployed. But why has this type of education failed? There are two causes for the failure. There was no relationship between the man power requirements in a particular industry and the opening of institutions. We have also opened these institutions on traditional models.

#### 18 hours

The second cause of failure is education. The best of these technical institutions continue to give an education which I call monastic education based on repetitive procedures. In these institutions the students have been exposed to standard responses and solutions to problems of a limited range of variables. They must give the students a quality of mind and only those basic skills which they can adopt in the rapidly advancing technological society in which they are living. Technical institutions today purvey a repetitive type of education. The persons who come out of them just cannot take their place in the industry of the country. What then are we to do with our schools. I feel, vocational education must be given a vocational bias and the courses should be properly planned. We should have junior colleges where our pupils can be admitted; we need not have degree colleges; let them go to the junior colleges and join vocational biased courses which are going to benefit them. I do not want to prevent them from going from the junior colleges to the universities. At the appropriate point of time if they are meritorious and talented, they should be able to join university courses.

There is one plea which I would make to the Home Minister, and he should see that it is done. It is this he must get the Home Ministry to abolish the degree requirement for Government posts except for certain categories. I think

this is essential before the higher education system can be reformed. Not only should we abolish the degree requirement, but we should make it a positive disqualification. What does it profit a young man to learn political science, solid state physics or literary appreciation, if he is going to become a Government clerk? One of the reason for the decline in University education is that we have put the degree to this base use. We are using it for producing Government clerks. We talk about reform in education but there can be no reform in education unless we do away with this degree requirement as far as Government jobs are concerned. This suggestion was made to him when the Education Minister was the Education Member of the Planning Commission, and I would ask him to take it up now.

There are only two other points which I want to make—one is about examination and the other about student violence. I have not a little to do with examinations; and in fact, I have been connected with examinations for the last 22 years. I disagree with some of my friends and I wish to place on record that the NCERT has been doing good work on refining examination procedures and techniques. I have seen some of the work which they have produced; and it is excellent. But, Sir, no amount of refinement of the examination techniques and procedures is going to help our examination system—especially at school stage—because our examination system suffers from what I would call, 'excessive obesity'. You cannot examine 4 or 5 lakhs of candidates and have an examination which is both valid and reliable. The only way to do this is for the examining boards to give over their power to smaller boards at district level, reducing the number of candidates to 15 or 20 thousands because the present number is more than any Examination Board can manage effectively to provide the examinations which are both reliable and valid.

Finally, I want to say this. I am not going to discuss student unrest because enough has been said about it. But the student violence is a thing that must be combated. We cannot permit the student violence to continue, we

cannot permit vandalism, threat to life and destruction of property to continue.

I would ask the Minister to refresh his memory as to what has happened in Calcutta University recently. The police were there but through some false notions of University autonomy or through false prestige the police were not called in after all till the damage that had been done. The police had prior information but they could not enter the university campus because of these false notions. I believe that West Bengal Government have given orders that if the police know that there is to be any violence they should act. I would ask my hon. friend, the Education Minister to follow what the French want to do. I was in Paris in 1968 after the student trouble and not before that I discussed this with at the university authorities and I asked them what they were going to do. They said that they were going to take administrative action to stop these. One of the administrative measures was to cover all the cobbles in the streets with tarmac so that the students could not tear up the cobbles to panes. The french are a practical people break the window. What are they doing now? They are creating a Paris University Police Force which will be under the Rector of the University. They will be on the Campus. There will thus be a force to deal with violence, to deal with destruction of property, to deal with threat to life.

I would ask the hon. Minister to consider this seriously. This will not cause any trouble because this force will not form part of the ordinary police force and this force will be under the Rector or the Vice-Chancellor of the University. The force will be presented on the University Campus and if there is going to be any violence or threat to life, it can be put down with firmness.

समाप्ति महोदय : श्री भक्त दर्शन ।

श्री मु० अ० खां (कासगंज) : आन ए पायंट आफ आर्डर, सर । मैं समझता हूँ कि जिस कुर्सी पर आप बैठे हुए हैं, वह दोनों तरफ के सदस्यों के अधिकारों की रक्षा करने के लिये

[श्री मु० अ० खां]

है। लेकिन इधर बैठने वाले सदस्यों के साथ बड़ी बेइन्साफी हो रही है। होता यह है कि इस तरफ से दो-दो मिनिस्टर इन्टरवीन करते हैं और आखिर में मिनिस्टर साहब जवाब देते हैं। इस तरह हमारे लिये जो समय एलाट होता है, उसका आधा हिस्सा मिनिस्टर ले लेते हैं। इसके अलावा उधर से पार्टियों के जो नेता बोलते हैं, उनको जो टाइम एलाट होता है, वे आपकी परमिशन से उससे ज्यादा ले लेते हैं। आप उनका कुछ लिहाज करते हैं। रह गये बेचारे इधर के बैठने वाले, उनको बोलने के लिये पूरा टाइम नहीं दिया जाता है। जब इधर से कोई बोलने लगता है, तो पांच मिनट के बाद आपकी घंटी बज उठती है। इस तरह हमारे साथ बड़ी ज्यादाती होती है। आखिर हम को भी अपनी कांस्टीट्यूएन्सी को मुंह दिखाना है, उसके लिए हमारी भी कुछ जिम्मेदारी है। इसलिये यह जरूरी है कि इधर के लिए जो टाइम फिक्स किया जाये, उसमें से मिनिस्टरों के लिए टाइम तय कर दिया जाये और बाकी का टाइम इधर के सदस्यों को दिया जाये। आप ऐसी व्यवस्था करें कि हमारे समय को न तो उधर के सदस्यों के लिये एडजस्ट किया जाये और न ही उसमें मंत्री बोलें। हमारा सारा टाइम तो मंत्री ही ले लेते हैं। आखिर हम यहां किस लिये आये हैं? हमें दूसरे सदस्यों की तरह हमारा हक मिलना चाहिए।

दूसरी बात मैं यह कहना चाहता हूँ कि जब दूसरी मिनिस्ट्रीज की डिमांडज के लिए टाइम बढ़ा दिया गया है, तब यह मिनिस्ट्री तो बहुत इम्पॉर्टेंट है, इसलिये इसके टाइम को छः घंटों से बढ़ा कर नौ घंटे कर दिया जाये। यह मेरा प्रोपोजल है कि और टाइम बढ़ाया जाय। इन दोनों बातों पर ध्यान दिया जाय और इसकी व्यवस्था की जाय।

सभापति महोदय : देखिये, जितनी पार्टीज

हैं उन सबका टाइम एलाटेड है। आपका भी टाइम एलाटेड है और इसमें जो उनके लीडर बोलते हैं, उनका टाइम जो होता है वह उनको दिया जाता है, यह सही है कि दो चार मिनट वह ज्यादा ले लेते हैं। लेकिन आपके यहां भी यह लम्बी लिस्ट है और उस लिस्ट के मुताबिक कम टाइम नहीं मिलता है। वह भी जो टाइम है उसमें से आपको भी दो चार मिनट इधर उधर हो ही जाता है। अब रह गई बात टाइम के एलाटमेंट की, वह अपने चीफ क्लिप से या, दूसरे लोगों से आप बात कर लीजिए। मुझ से उसके बारे में क्यों कहते हैं ?

श्री मु० अ० खां : टाइम बढ़ाने के बारे में क्या हुआ ?

सभापति महोदय : यह आखिर में कहिएगा। अभी तो चलने दीजिए। टाइम मत खराब करिए।

शिक्षा तथा युवक सेवा मंत्रालय में राज्य मंत्री (श्री भक्त बर्षन) : सभापति महोदय, शिक्षा मंत्रालय के अनुदानों की मांगों पर कल और आज आकर्षक और विचारोत्तेजक वाद-विवाद हुआ है। उसका समापन तो माननीय शिक्षा मंत्री जी करेंगे। लेकिन थोड़े से समय के अन्दर मैं बहुत ही संक्षेप में कुछ बातों पर मंत्रालय की ओर से प्रकाश डालने का प्रयत्न करूंगा।

श्रीमन्, इस वाद-विवाद के सम्बन्ध में कई कटीती-प्रस्ताव इस आशय के सूचित किए गए थे कि संविधान में जो निर्देशक सिद्धांत स्थिर किया गया था कि निःशुल्क प्राथमिक और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की जाय, उसमें हम असफल रहे हैं। यहां सदन में भी श्री एंथोनी रेड्डी, श्री अंबाजागन, श्री कौशिक, श्री ज्योतिर्मय बसु, श्री मनुभाई जे० पटेल, श्री वैरो आदि ने इस पर प्रकाश डाला है। सदन

की भावनाओं से अपनी भावनाएं मिलाते हुए मैं मंत्रालय की ओर से यह कहना चाहता हूँ कि हमें भी स्वयं इस बात का बड़ा खेद है और बड़ी निराशा है कि जो हमने निर्देशक सिद्धांत स्थिर किया था उसके अनुसार हम कार्य नहीं कर सके हैं। हमने निश्चय किया था कि दस वर्षों के अन्दर यानी 1950 से 1960 तक हम 6 वर्ष से 14 वर्ष तक के सब बच्चों के लिए अनिवार्य निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था कर देंगे। लेकिन केन्द्रीय सरकार की दिलचस्पी होते हुए भी और राज्य सरकारों का पूरा सहयोग होने पर भी यह लक्ष्य अभी तक प्राप्त नहीं हो सका है। इसीलिए शिक्षा आयोग ने जब अपना प्रतिवेदन दिया था तब उन्होंने इन लक्ष्यों के अन्दर संशोधन किया था और उन्होंने यह आशा प्रकट की कि 1976 तक 11 वर्ष तक के बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था कर दी जाय और 1986 तक 14 वर्ष तक के बच्चों की शिक्षा की भी व्यवस्था कर दी जाय। लेकिन एक ओर जनसंख्या में जो बढ़ोत्तरी हो रही है और दूसरी ओर धन में जो कमी की जा रही है इससे आशंका होती है कि ये लक्ष्य इन तिथियों तक भी पूरे नहीं हो सकेंगे। स्थिति हमारे देश में यह है कि कुछ राज्य इसमें काफी आगे हैं; और कुछ पीछे हैं, खास करके मैं अपने मित्रों से यह कहना चाहता हूँ कि हमारे हिन्दी भाषी राज्य इसमें सबसे पीछे रह गये हैं। विशेषकर महिलाओं की भर्ती इन राज्यों में बहुत कम होती है और इसकी वजह से भी हमारी शिक्षा का प्रतिशत घटता चला गया है। लेकिन मोटे तौर से स्थिति यह है कि पांचवीं कक्षा तक सारे देश में लगभग निःशुल्क शिक्षा हो चुकी है और आठवीं कक्षा तक लड़के लड़कियों के लिये कुछ राज्यों में शिक्षा निःशुल्क की गई है। कुछ में केवल लड़कियों के लिए की गई है। जैसा श्री ज्योतिर्मय बसु ने कहा कि पश्चिमी बंगाल में कुछ अड़चनें हैं और आसाम में भी लड़कों के लिए और लड़कियों

के लिए भी अभी तक आठवीं कक्षा तक शिक्षा को निःशुल्क नहीं किया जा सका है। नागालैंड को छोड़कर सभी राज्यों में अनिवार्य शिक्षा सम्बन्धी कानून तो पास कर दिये गये हैं लेकिन उन्हें लागू करने में कई अड़चनें आ रही हैं। इसलिये राज्य सरकारों ने यह निश्चय किया है कि समझाबुझकर लोगों को इस ओर आकर्षित किया जाय और निःशुल्क शिक्षा की सुविधा दी जाय। लेकिन सबसे बड़ा प्रश्न जो यहां पर रखा गया और जो बड़ा उचित भी है कि केन्द्र इस बारे में सहायता क्यों नहीं देता? इस सम्बन्ध में हमारे मंत्री जी ने अभी बीच में हस्तक्षेप करते हुए कहा था कि यह राज्य सरकारों का विषय है। लेकिन इस सम्बन्ध में दूसरी स्थिति यह है और जैसा कि प्रश्नोत्तर के समय इस सदन में कुछ दिनों पहले बताया गया था, पिछले दिनों राष्ट्रीय विकास परिषद् की जो बैठक हुई थी जिसमें सभी राज्यों के मुख्य मंत्री हैं—उस बैठक में सभी राज्यों ने यह अनुरोध किया कि उनको जो सहायता या अनुदान दिया जाय, वह बल्क ग्रांट के रूप में दिया जाना चाहिये। केवल प्राथमिक शिक्षा के लिये या किसी क्वालिटेटिव इम्प्रूवमेंट के लिये—जैसा कि श्री बैरो भी कह रहे थे—हम कोई अलग अनुदान नहीं दे सकते। राज्य सरकारें चाहती हैं कि उन्हें भारत सरकार की तरफ से इकट्ठी रकम दे दी जाय और उसका बंटवारा वे स्वयं करें। लेकिन जैसा कि इस सदन में बाद-विवाद हुआ है और देश में जो वातावरण पैदा हो रहा है उससे हमें आशा है कि राज्य सरकारें इस पर पहले से अधिक ध्यान देंगी।

यहां महिला शिक्षा के सम्बन्ध में श्रीमती लक्ष्मी बाई संगम्मा जी ने जो विचार प्रकट किये, हम सब लोग उनसे पूरी तरह से सहमत हैं। श्री मणि भाई पटेल ने भी इस सम्बन्ध में उल्लेख किया है। महिलाओं की शिक्षा के सम्बन्ध में, जो राष्ट्रीय शिक्षा परिषद नियुक्त

## [श्री भक्त दर्शन]

की गई है, उनसे सुझाव देने का अनुरोध किया गया है। वे जो सुझाव देंगे, उन पर राज्य सरकारों के सहयोग से मुझे विश्वास है कुछ दिनों में स्थिति में सुधार होगा। पहले से उनकी संख्या बढ़ती भी जा रही है। अतः मैं श्रीमती लक्ष्मी बाई जी को, उनकी अनुपस्थिति में, यह आश्वासन देता हूँ कि उनको किसी घरने या घाबे की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, तथा घेराव की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। इस सम्बन्ध में स्थिति में निश्चित रूप से सुधार होता जा रहा है।

श्रीमन्, अध्यापकों के वेतन-क्रमों और अन्य सुविधाओं के सम्बन्ध में कई कटौती प्रस्ताव आये हैं और कई माननीय सदस्यों ने इस पर जोर भी डाला है। जहाँ तक भारत सरकार का सम्बन्ध है—हमारी इस बारे में बड़ी गहरी सहानुभूति है और हम यह चाहते हैं कि हमारे अध्यापकों को सम्मानपूर्ण वेतन मिले, समाज में उनका आदर किया जाय तथा उन्हें अधिक से अधिक सुविधायें उपलब्ध हों। शिक्षा आयोग ने इस सम्बन्ध में जो सिफारिशें की थीं, वे तत्काल राज्य सरकारों के ध्यान में लाई गई थीं और मुझे यह देख कर प्रसन्नता होती है और सदन के माननीय सदस्य भी सहमत होंगे कि अधिकांश राज्यों ने उन पर अमल करने का प्रयत्न किया है, यद्यपि अभी बहुत कुछ करना शेष है।

एक बात खास तौर से रखी जाती है कि सारे देश में हमें एक ही प्रकार का वेतन-क्रम रखना चाहिये पर यह व्यावहारिक प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि राज्य सरकारों के कर्मचारियों के जो वेतन-क्रम हैं—एक राज्य से दूसरे राज्य में काफी अन्तर है, —उसी अनुपात से वहाँ के अध्यापकों के वेतन-क्रमों में अन्तर होना अनिवार्य है।

लेकिन जो गैर-सरकारी स्कूलों के अध्यापक

है, उनके लिये ट्रिपलबेनिफिट स्कीम के लिये हम प्रयत्न कर रहे हैं। अभी कुछ दिन पहले इस सदन में एक प्रश्न पूछा गया था और मैंने उसका उत्तर देते हुए बताया था कि करीब-करीब सभी राज्यों ने इस तरह की त्रिसूत्री सुविधा देने की व्यवस्था कर दी है। उड़ीसा में जरूर केवल प्राथमिक अध्यापकों के लिये ही यह सुविधा दी गई है, लेकिन वहाँ के शिक्षा मंत्री जी का ध्यान मैं स्वयं इस ओर आकर्षित कर रहा हूँ कि सेकण्डरी स्कूलों के अध्यापकों को भी यह सुविधा मिलनी चाहिये।

एक कटौती-प्रस्ताव इस आशय का दिया गया है और श्री सरजू पाण्डे ने भी उसका उल्लेख किया था कि अध्यापकों को वेतन खजाने से दिया जाना चाहिये ताकि उनको वास्तव में जितनी रकम दी जानी चाहिये, उनको उतनी रकम प्राप्त हो जाय तथा जाली रसीदें बनाने की जो शिकायतें आती हैं, वे दूर हो सकें। लेकिन इसमें हमारी कठिनाई यह है कि खजाने राज्य सरकारों के अन्तर्गत हैं। अतः सदन के सुझावों को हम राज्य सरकारों तक पहुंचा देंगे और मुझे उम्मीद है कि राज्य सरकारें इस सम्बन्ध में प्रयत्नशील भी हैं।

जैसा कि मुझे मालूम हुआ है—बिहार में शिक्षकों का जो आन्दोलन चल रहा था, वह वहाँ के मुख्य मंत्री जी के आश्वासन पर स्थगित कर दिया गया है और वे बड़ी सहानुभूतिपूर्वक उनकी मांगों पर विचार कर रहे हैं।

जहाँ तक दिल्ली, हिमाचल प्रदेश तथा अन्य केन्द्र-शासित राज्यों का सम्बन्ध है, अभी हाल में गृह मंत्रालय ने यह तय किया है कि चाहे अध्यापकों या किसी भी वर्ग के कर्मचारियों का सम्बन्ध है, उनको केन्द्रीय कर्मचारियों के समान वेतन दिया जाना चाहिये। तीसरा वेतन आयोग, जैसा कि इस सदन को मालूम है, नियुक्त होने वाला है। उसको यह

कार्य-भार भी दिया जा रहा है कि वह केन्द्रीय कर्मचारियों के अतिरिक्त जो हमारे संघीय क्षेत्र हैं, उनके कर्मचारियों के वेतन क्रमों के बारे में भी विचार करें। इससे भी दिल्ली, हिमाचल प्रदेश तथा अन्य संघीय क्षेत्रों के अध्यापकों की स्थिति में सुधार हो सकेगा।

श्रीमन्, भाषा के सम्बन्ध में यहां पर कई विचार प्रकट किये गये हैं। एक मांग यह की जाती रही है और स्वयं इस पार्लियामेंट ने भी कुछ वर्ष पहले एक प्रस्ताव पारित किया था कि उच्चतम शिक्षा की व्यवस्था भारतीय भाषाओं में की जाय। शिक्षा आयोग ने भी इसकी जोरदार सिफारिश की थी। माननीय सदस्यों को मालूम होगा कि शिक्षा मंत्रालय ने एक नई योजना जारी की है, जिसके अनुसार प्रत्येक राज्य को पांच-छः वर्षों के अन्दर एक करोड़ रुपये तक की सहायता दी जा सकेगी, केवल नागालैंड और संघीय क्षेत्रों को छोड़कर सन् 1968-69 तक इसमें 75 प्रतिशत सहायता दी जाती थी, लेकिन पिछले वर्ष से वह शत प्रतिशत कर दी गई है। सभी राज्यों में हमारे अनुरोध पर स्वशासी बोर्ड यानी आटोनामस बोर्डों की स्थापना की जा चुकी है। सन् 1968-69 में 34.48 लाख रुपये उसमें दिये गये थे। पिछले वर्ष मैं मानता हूँ एक करोड़ 50 लाख रुपये की व्यवस्था थी, लेकिन उसमें से 60 लाख रुपये ही राज्य सरकारों को दिए गए। इसमें हमारी कठिनाई यह है कि हमने सभी राज्य सरकारों से अनुरोध किया था कि वे इस बारे में जो भी खर्च करना चाहें, कर सकती हैं और रुपये की कमी नहीं होने दी जायेगी, लेकिन राज्य सरकारों ने पिछले एक-दो वर्षों में स्वशासी बोर्डों के बनाने में काफी समय लगाया है। अब हमें आशा है कि चूंकि इस तरह के आटोनामस बोर्ड बन गये हैं और उनका काम शुरू हो गया है, इसलिए अब यह काम आगे तेजी से बढ़ेगा।

जहां तक हिन्दी-भाषी राज्यों का सम्बन्ध है, एक समस्या हमारे सामने यह आई थी कि सभी भाषाओं के एक-एक राज्य हैं लेकिन हिन्दी भाषा बोलने वालों के पांच राज्य हैं। इसलिये कहीं ऐसा न हो कि एक ही पुस्तक के पांच पांच अनुवाद हो जायें। उनके बीच में कोई डुप्लीकेशन न हो, 'वेस्टेज' न हो, इसको बचाने के लिए इन पांचों राज्यों की एक समन्वय समिति बनाई गई है; और उसके परामर्श से किताबों का एलाटमेन्ट किया जाता है। मैं आपको बताना चाहता हूँ कि इन पांचों राज्यों में हिन्दी ग्रन्थ एकाडेमियों की स्थापना की जा चुकी है। बिहार को 105, हरयाणा को 115, राजस्थान को 94, मध्य प्रदेश को 430 और उत्तर प्रदेश को 259 पुस्तकों का एलाटमेन्ट किया जा चुका है, अनुवाद के लिए अथवा मौलिक लेखन के लिए। इसके सिवाय इंजीनियरी, कृषि और आयुर्विज्ञान के कार्यों के बारे में इन्हीं राज्यों ने यह कहा है कि केन्द्रीय सरकार के द्वारा इसे किया जाये। इस सम्बन्ध में भी हमने (सम्बजेक्ट्स पैनल) विषय नामिकार्य बनाई हैं और यह काम तेजी से आगे बढ़ रहा है।

एक कठिनाई हमारे सामने जो इस बीच आई है और आती रही है और जिससे माननीय सदस्य भी परिचित हैं, वह कापीराइट (लिप्यन्तरण) के बारे में है। विदेशों से जिन पुस्तकों का अनुवाद किया जाता है, उनका कापीराइट प्राप्त करने में पहले बड़ी कठिनाई हुआ करती थी और आप जानते ही हैं कि वर्न कन्वेंशन आदि के बारे में काफी वाद विवाद रहा है कि हमें उससे हट जाना चाहिए और जैसा बहुत से देशों ने अपने को उससे अलग और स्वतन्त्र घोषित कर दिया वैसे ही हमें भी कर देना चाहिए, लेकिन सभी पहलुओं पर विचार करके हमने निश्चय किया कि उनके साथ बातचीत की जाये। आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि रूसी पुस्तकों के अनुवाद के बारे में कापी-

## [श्री भक्त दर्शन]

राइट का कोई सवाल नहीं उठता। पर अमेरिका और इंग्लैंड की पुस्तकों के बारे में अड़चनें पड़ रही हैं। अमेरिका के प्रकाशकों ने बहुत उदार और अच्छी शर्तें दी हैं और इसी प्रकार से ब्रिटिश प्रकाशकों ने भी बहुत अच्छी शर्तें दी हैं और यह भी आशा की जाती है कि बड़े पैमाने पर कापीराइट का सवाल एक बल्क तरीके पर तय हो जायेगा तथा सैकड़ों व हजारों पुस्तकों के कापीराइट हमें मिल जायेंगे जिन्हें हम राज्यों में देंगे। सेन्ट्रल एजेंसी के द्वारा हम कापीराइट को ले रहे हैं, और उनका वितरण हम सब राज्यों में कर देंगे। ज्यों ज्यों वे उन पुस्तकों की मांग करेंगे, उसके अनुसार उनका कार्य आगे बढ़ाया जायेगा।

श्रीमन्, जब हम पुस्तकों का अनुवाद करते हैं अथवा पुस्तकों की रचना करते हैं, विश्व-विद्यालय के स्तर की, तब पारिभाषिक शब्दावली का प्रश्न हमारे सामने आता है कि कैसी टर्मिनोलौजी होनी चाहिए। इसके लिए शिक्षा मंत्रालय ने राष्ट्रपति जी के आदेश के अनुसार कुछ वर्ष पहले एक कमीशन फौर साइंटिफिक एंड टेक्निकल टर्मिनोलौजी (वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग) की स्थापना की थी जिसके द्वारा अब तक लगभग तीन लाख शब्दों की रचना की जा चुकी है। केवल इंजीनियरिंग के कुछ शब्द रह गए हैं जो कि आशा है कि कुछ दिनों में पूरे हो जायेंगे। जहां तक हिन्दी राज्यों का सवाल है, उन्होंने उस शब्दावली को पूरी तरह से स्वीकार कर लिया है। उनमें जितनी पुस्तकें बन रही हैं, वे सब नयी शब्दावली के अनुसार बन रही हैं। हमारी इच्छा यह है कि यह शब्दावली केवल हिन्दी-भाषी राज्यों के लिए ही न रहे बल्कि जितने भी और भाषाओं के क्षेत्र हैं वहां पर भी उसका उपयोग किया जाये। इसलिए हमने सभी राज्य सरकारों से अनुरोध किया है कि पुस्तकों का अनुवाद करते समय

अथवा लिखते समय हमारी इस टर्मिनोलौजी को ध्यान में रखें।

कल श्री सरजू पाण्डेय जी जब बोल रहे थे तो उन्होंने बड़े स्वीपिंग रिमार्क्स किए कि जो शब्दावली बनाई जा रही है वह रघुवीरी टाइप की बनाई जा रही है। श्रीमन् हालांकि डा० रघुवीर का स्वर्गवास हुए काफी वर्ष हो गए, लेकिन मैं समझता हूं कि उनकी छाया शायद अभी तक उनको परेशान करती रही है। इसमें कोई शक नहीं कि डा० रघुवीर ने जिन शब्दों की रचना की थी, उनके द्वारा उन्होंने अपनी योग्यता और विद्वता के द्वारा यह सिद्ध कर दिया था कि संस्कृत का आधार ले करके संसार के किसी भी शब्द का समानार्थक शब्द बनाया जा सकता है। इसके लिए उनकी तारीफ करनी पड़ेगी। लेकिन हमने जिन शब्दों की रचना की है उसमें नये आधार रखे गए हैं, जिसमें प्रेसीसन और क्लैरिटी होनी चाहिए, अर्थात् अन्दर स्पष्टता होनी चाहिए, और जो अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली है उसका भी उपयोग करने का पूरा प्रयत्न किया गया है। जो शब्द अन्य भाषाओं में आ चुके हैं उनको भी लेने का प्रयत्न किया गया है, और जहां पर कोई शब्द न मिले वहां पर संस्कृत का आधार लेना आवश्यक है।

श्रीमन् 351 धारा जो संविधान की है उसमें साफ तौर से कहा गया है कि यद्यपि हिन्दी सारे देश की जो सामूहिक संस्कृति है, सामाजिक संस्कृति है उसका प्रतिनिधित्व करेगी, लेकिन उसका मूल आधार संस्कृत होगी तथा उसके बाद अन्य भाषाएं। इसमें सबसे बड़ी हमारे सामने सुविधा यह है कि हमारी सभी भाषाएं या तो संस्कृत से निकली हैं अथवा संस्कृत का उन पर प्रभाव पड़ा है। और इसलिये अगर हम संस्कृत के मूल से किसी शब्द की रचना करते हैं तो सारे देश में लोग

उसको समझ सकते हैं, लेकिन किसी और आधार को लेंगे तो लोग नहीं समझ सकेंगे। इसलिये मैं माननीय सरजू पांडेय को बतलाना चाहता हूँ कि हम चाहते हैं कि हमारी शब्दावली सरल हो लेकिन सरलता का मतलब यह नहीं की उसकी आत्मा या प्रतिभा ही समाप्त हो जाय। जैसे मैं उदाहरण के लिये बतलाऊँ कि सल्फर का जब अनुवाद किया जा रहा था तो कई संस्कृत के शब्द बनाये जा रहे थे, आखिर में सोच समझ कर गंधक शब्द इस्तेमाल किया गया। तो हमारा कमीशन और मंत्रालय सरल शब्दों के पक्ष में है। लेकिन सरलता का मतलब हिन्दी की आत्मा और उसकी प्रतिभा को समाप्त करना नहीं है।

श्री इसहाक सम्मली (अमरोहा) : उस तरह के जो शब्द आर्टिफिशियल हिन्दी के तौर पर डा० रघुवीर ने बनाये थे, जिनको आप ने ऐडमिट किया है, तो आप क्यों नहीं कहते हैं कि आप ने उनको अब छोड़ दिया है। इससे बहुत सी चीजें अपने आप खत्म हो जायेंगी।

श्री मन्त बर्षन : श्रीमन्, कल श्री सरजू पाण्डेय चाय के लिये 'दुग्ध शर्करा मिश्रित पेय पदार्थ' शब्द का इस्तेमाल किया था, वह केवल हिन्दी का मजाक उड़ाने के लिये कहा था।

मैं आपको बतलाऊँ कि मोटर, इंजन, रेल आदि शब्दों का अनुवाद करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि ये शब्द व्यवहार में आ चुके हैं।

श्रीमन्, जैसा कि मैंने निवेदन किया शब्दावली अयोग ने शब्द रचना का कार्य करीब करीब समाप्त कर लिया है। अब आवश्यकता इस बात की है कि जिन शब्दावलीयों की रचना की जा चुकी है, उनका उपयोग किया जाय। अतः जो विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकों की रचना की जा रही है। हम उनमें उनका उपयोग कर रहे हैं और अगर

कोई कठिनाई आयेगी तो उनमें परिवर्तन भी किया जा सकेगा। इसलिये मंत्रालय का विचार है कि सेन्ट्रल हिन्दी डायरेक्टोरेट और शब्दावली आयोग का रीऑर्गनाइजेशन किया जाय। इसके सम्बन्ध में हम लोग ऐसी योजना बना रहे हैं ताकि काम अधिक हो और खर्चा भी कम हो और हमारे उद्देश्यों की पूर्ति भली प्रकार हो सके।

यहां पर माननीय श्री नवल किशोर शर्मा जी जब भाषण दे रहे थे तो उन्होंने बताया और श्री विश्वभरन साहब ने अपने कटौती प्रस्ताव में भी यह कहा है कि गैर-सरकारी संस्थाओं को हिन्दी के सम्बन्ध में पूरी सहायता नहीं दी जा रही है। मैं कुछ आंकड़े सदन के समक्ष रखता हूँ। 1951-52 में जब हिन्दी सेवा संस्थाओं को सहायता देने का कार्यक्रम शुरू किया गया था तब केवल 96,000 रु० दिया गया था। 1964-65 में यह राशि बढ़ कर 9 लाख 66 हजार रु० हो गयी और 1968-69 में 11 लाख 41 हजार 150 रु० दिया गया। 1969-70 में 14 लाख रु० की व्यवस्था थी। हमारी रिपोर्ट में बताया गया है कि फरवरी तक केवल चार लाख रु० खर्च हुआ था लेकिन मार्च में ज्यादा पेमेंट होते हैं, इसलिये कुल 13 लाख 76 हजार रु० मार्च के अन्त तक धिये जा चुके हैं और उनका बटवारा किया जा चुका है। मेरा मतलब वोलेंटरि आर्गनाइजेशन से है।

उनके अतिरिक्त जितने भी हिन्दी अध्यापक अहिन्दी-भाषी क्षेत्रों में हिन्दी पढ़ाने के लिये नियुक्त किये जाते हैं उनका भी सारा खर्चा हम दे रहे हैं तथा जितने भी हिन्दी टीचर्स ट्रेनिंग कालेज हैं, उनका भी पूरा खर्चा हम दे रहे हैं। मैनूअल्स व फार्म के अनुवाद के बारे में एक आलोचना श्री शर्मा की यह थी कि 23 हजार पृष्ठ अनुवाद करने के लिये हमारे सेन्ट्रल हिन्दी डायरेक्टोरेट को दिये गये थे,

### [श्री भक्त दर्शन]

पर केवल 12 हजार पृष्ठों का ही अनुवाद किया गया है। लेकिन मैंने पूछताछ की तो पता चला कि मार्च के अन्त तक 17,353 पृष्ठों का अनुवाद किया जा चुका था हमारे पास स्टाफ कम है, हमने होम मिनिस्ट्री और वित्त मंत्रालय से बातचीत की है और हमने उनसे कहा है कि जितना स्टाफ हमारे पास है उससे केवल हम इतने ही मैनुअल और फार्मों का अनुवाद कर सकते हैं। लेकिन मुझे आशा है कि अगर यह योजना पुनर्गठित हो गयी तो बड़े पैमाने पर इस काम को आगे बढ़ाया जा सकेगा।

श्रीमन् हमारे मित्र, द्रविड़ मुनेत्र कड़गम के श्री अंबाजागन साहब ने केन्द्रीय विद्यालयों के बारे में यह शिकायत की कि उनमें क्षेत्रीय भाषाओं की शिक्षा की व्यवस्था नहीं है। सदन को यह मालूम होना चाहिये कि यह केन्द्रीय विद्यालय क्यों स्थापित किये गये? जो सेकेन्ड पे कमीशन था, उसने यह सिफारिश की थी कि हम वेतन तो बढ़ा रहे हैं, लेकिन अपने सरकारी कर्मचारियों को हमें कुछ सुविधायें देनी चाहियें। और आप जानते हैं कि हर एक राज्य में शिक्षा का माध्यम बदल गया और स्थानीय भाषा ही माध्यम हो गयी, जो उचित ही है, और हम लोग उसके लिये खुद प्रयत्नशील हैं। लेकिन केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों को जो कठिनाई हो रही है उसको भी ध्यान में रखना चाहिये। मान लीजिये आज कोई कर्मचारी दिल्ली में है जहां कि हिन्दी माध्यम है, कल को वह गौहाटी जाता है, तो असमिया माध्यम हो जाती है; दूसरे दिन अगर बंगलौर जाता है तो कन्नड़ माध्यम हो जाती है। तीसरे दिन वे पूना जाते हैं तो मराठी का माध्यम हो जाता है। इन सब दिक्कतों से बचने के लिये वेतन आयोग ने सिफारिश की थी कि कुछ ऐसे स्कूल होने चाहिये जहां केन्द्रीय कर्मचारियों के

बच्चों के लिये एक ही पाठ्यक्रम हो, एक ही माध्यम हो, एक ही तरह की टेक्सबुक बुक्स हों और जहां कहीं भी वे जायें, उनको प्रवेश मिल सके। इसी आधार पर इन केन्द्रीय विद्यालयों की श्रृंखला स्थापित की गई।

अब जहां तक तीसरी भाषा का सम्बन्ध है, हमने पहले-पहले यह एक्सपेरीमेंट किया था कि स्थानीय भाषा रखी जाए, लेकिन उसका दूसरा पहलू देखने से मालूम होगा कि अगर एक लड़का मान लीजिए कि मद्रास में है और उसकी दूसरे दिन गौहाटी में बदली हो जाती है, तो उसका तामिल पढ़ना बेकार हो जाता है। इसलिए सब सोच कर केन्द्रीय विद्यालय संगठन ने यह तय किया कि हम तीसरी भाषा के स्थान पर संस्कृत को अनिवार्य रूप से पढ़ाएं, ताकि जहां कहीं भी विद्यार्थी जायें वहां संस्कृत को लेकर जायें लेकिन जहां तक क्षेत्रीय भाषा का सम्बन्ध है, हमने एक नया फारमूला निकाला है कि अगर अच्छी संख्या में बच्चे शिक्षा के लिए उत्सुक हों तो उनके लिये भी हम कुछ व्यवस्था करेंगे चौथी भाषा के रूप में, अतिरिक्त भाषा के रूप में और उसका खर्च केन्द्रीय विद्यालय संगठन उठाएगा।

श्रीमन्, एक बात और कह कर मैं समाप्त करता हूं। श्री पी० एंथोनी रेड्डी ने कल शारीरिक दक्षता के बारे में कुछ विचार रखे थे। इसमें शक नहीं कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है; और इसी लिए सारे देश में शारीरिक विकास के लिये और खेल कूदों को प्रोत्साहन देने के लिए हमारा मंत्रालय प्रयत्नशील है।

एक माननीय सचिव : यह तो होता है।

श्री भक्त दर्शन : उन्होंने शिकायत की थी कि यह नहीं होता है तथा उन्होंने कहा था

कि पूरी तरह नहीं होता है। इसलिए मैं ध्यान दिलाना चाहता हूँ कि इसमें बहुत कुछ हो रहा है और इसके लिये हम लोग प्रयत्नशील हैं। जहाँ तक स्कूल स्टेज का सम्बन्ध है, एक राष्ट्रीय दक्षता कार्यक्रम राष्ट्रीय फिटनेस कोर चल रहा है और राज्य सरकार इसमें काफी दिलचस्पी ले रही हैं। जहाँ तक विश्वविद्यालयों का सम्बन्ध है, एक नेशनल स्पोर्ट्स आर्गनाइजेशन प्रारम्भ किया गया है ताकि जो लड़के एन० सी० सी० न लेना चाहें, वे इन खेलों में सम्मिलित हो सकते हैं।

इसके अलावा एक स्कीम फौर स्पोर्ट्स टेलेन्ट्स-सर्च स्कालरशिप्स की है। इसमें 200 नई छात्रवृत्तियाँ माध्यमिक विद्यालयों के बच्चों को दी जाएंगी राष्ट्रीय स्तर के लिए जिनको 600 रुपये वार्षिक मिलेगा; और राज्य-स्तर की प्रतियोगिताओं के लिए 400 छात्रवृत्तियाँ दी जाएंगी, जिनको 300 रुपये प्रति माह दिया जायेगा, ताकि जो अच्छे खिलाड़ी हैं उनको प्रोत्साहन मिल सके और वे उन्नति कर सकें।

इसके सिवा राष्ट्रीय शारीरिक दक्षता आन्दोलन (नेशनल फिजिकल एफीशियन्सी ड्राइव) भी बढ़ा सफल रहा है। 1968-69 में 11 लाख व्यक्तियों ने इसमें भाग लिया था और पिछले साल लगभग 17 लाख व्यक्तियों के भाग लेने की आशा की जाती थी। हम लोग चौथी पंच वर्षीय योजना में ग्रामीण खेल केन्द्रों का विकास करने का भी प्रयत्न कर रहे हैं, ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में जो विद्यार्थियों और नान-स्टूडेंट यूथ्स को सुविधाएँ नहीं मिल रही हैं, वे उनको मिल जायें। हम इस योजना पर शीघ्र ही कार्यवाही करने का प्रयत्न करेंगे।

अभी हमारे श्री ज्योतिर्मय बसु साहब ने योग आश्रम के बारे में कुछ आक्षेप किये। योग एक बहुत अच्छी भारतीय विद्या है। उसका भी हम विकास कर रहे हैं। जहाँ तक

श्री घीरेन्द्र ब्रह्मचारी जो द्वारा स्थापित आश्रम का सवाल है, उसके सब एकाउन्ट्स आडिट होते हैं। इसका जवाब मैं कुछ ही दिन पहले उनके प्रश्न के उत्तर में दे चुका हूँ। यदि वे चाहेंगे... ..

श्री राम सेवक यादव (बाराबंकी) : मंत्री लोग भी योग सीखते हैं ... (व्यवधान) ... मैं जानना चाहता हूँ कि क्या मंत्री लोग भी जाते हैं क्योंकि जब मंत्री जायेंगे तो लोग समझेंगे कि सब कुछ ठीक ठाक है और योग ठीक सिखाया जा रहा है और जब प्रधान मंत्री जायेंगी तो और भी ज्यादा ठीक हो जायगा।

श्री भक्त बर्शन : श्रीमन्, इसका जवाब यह है कि केवल मंत्री ही नहीं जाते बल्कि बहुत से संसद सदस्य भी जाते हैं। (व्यवधान)

श्री राम सेवक यादव : आप को पता होना चाहिए कि बगैर संसद सदस्य हुए कोई मंत्री नहीं हो सकता। इसलिये यह सवाल नहीं उठाए। (व्यवधान)

श्री भक्त बर्शन : श्रीमन्, खेलों का जहाँ तक सम्बन्ध है, इसमें कोई शक नहीं है कि हमारे देश का जो राष्ट्रीय स्तर है वह उतना संतोषजनक नहीं है जितना कि होना चाहिये। मैक्सिको में जो हमें हाकी के मैदान में असफलता मिली, उसको सारे देश में राष्ट्रीय अपमान के रूप में अनुभव किया गया था।

श्री ज्योतिर्मय बसु (डायमंड हार्बर) : नेशनल म्यूजियम के डायरेक्टर के बारे में भी बातला दीजिये ?

श्री भक्त बर्शन : श्रीमन्, उसके बारे में मिनिस्टर साहब कहेंगे। (व्यवधान) तो जब हाकी के खेल में हमें असफलता मिली, तो सदन को मालूम होगा कि एक इन्कवायरी कमेटी बिठाई गई थी और उसने अपनी रिपोर्ट दी

[श्री भक्त दर्शन]

है। हम अखिल भारतीय हाकी फेडरेशन और इंडियन ओलम्पिक संघ से अनुरोध कर रहे हैं कि उस पर अमल किया जाना चाहिये।

लेकिन हमारी सबसे बड़ी कमी यह है कि हमारे खिलाड़ियों के अन्दर पूरा 'स्टैमिना' नहीं होता। इस सिलसिले में हाकी के बारे में इन-क्यायरी कमेटी की रिपोर्ट, जो सरीन कमेटी की रिपोर्ट कहलाती है, सदन में रखी गई है।

इस सम्बन्ध में मैं यह कहना चाहता हूँ कि स्पोर्ट्स का जनरल स्टैंडर्ड ऊंचा करने के लिये हमने दो संस्थाएं स्थापित की हैं। एक तो ग्वालियर में लक्ष्मी बाई कालेज आफ फिजिकल एजुकेशन है, जिसका अब धीरे-धीरे विकास हो रहा है; और दूसरा नेशनल इंस्टीट्यूट आफ स्पोर्ट्स, पटियाला है, जिसके द्वारा कोर्चिंग स्कीम सारे देश में चलाई जाती है। लेकिन दिल्ली देश की राजधानी है। इसलिये यहां पर भी राजघाट में 110 एकड़ जमीन हमें प्राप्त हुई है, जहां पर राष्ट्रीय खेल मैदान विकसित किये जा रहे हैं। इसके सिवाय हम और भी जमीन लेना चाहते हैं और नेशनल स्टेडियम को भी बढ़ाना चाहते हैं, ताकि वह दिन जल्दी आये जबकि हम दिल्ली में ही एशियन खेलों की व्यवस्था कर सकें और ओलम्पिक खेलों के लिये भी व्यवस्था कर सकें।

मैं आशा करता हूँ कि यदि सदन का हमें सहयोग प्राप्त हुआ तो हम खेलों को तथा शारीरिक विकास का स्तर ऊंचा करने में सफल होंगे। धन्यवाद।

श्री इसहाक सम्मली : समापति महोदय, योग के बारे में मैं जानना चाहता हूँ कि...\*\*

समापति महोदय : जो भी मेम्बर बिना आदेश के बोलेंगे उनका भाषण रेकार्ड में नहीं

जाएगा। श्री खां ने टाइम बढ़ाने के लिये कहा। अभी बहुत से लोग बोलने वाले हैं। दूसरी पार्टीज के इंपार्टेंट लोग बोलने वाले हैं। इसलिये हम-आधा घंटा समय बढ़ा देते हैं। मिनिस्टर साहब आज ही शुरू कर देंगे और कल वह कंप्लीट करेंगे।

SHRI EBRAHIM SULAIMAN SAIT (Kozhikode) : Sir, I rise to participate in the discussion on Education Demands and I am thankful to you for giving me this opportunity.

Education is a vital subject and a gigantic problem concerning more than 250 million of our younger generation and the future hope of our great country. But, unfortunately, our present education system does not present a bright picture. Instead of producing more and more intelligent scholars and able technicians, the present education system is generating more and more frustration which is evident among the student population and by the growing indiscipline in our educational institutions that we see today.

To remove these drawbacks and shortcomings the Centre must formulate some policy acceptable to all sections of the people and capable of solving the problems facing us. I may be permitted to point out that the education system has an important role to play in the social and economic development of our country and in building a truly democratic and enlightened society. But I am sorry that our present education system has failed to fulfil this important and noble role. For the noble purpose of building a truly democratic and enlightened society, the text-books which go to create the first impression on the tender brains of our little ones at the school stage have to be very carefully written and selected. It is really very unfortunate that the State Governments, particularly the Government of Uttar Pradesh, have failed miserably in this regard. The Centre also did not come forward to rectify this evil.

The House is aware that our great country

is a multi-cultural and multi-lingual country. In order to bring ourselves closer to each other we must evolve a system and policy that is acceptable to all communities and all sections of our people. Not only the policy but also the teachers and the text-books have a major part to play in this regard.

We declare ourselves to be a secular country. After such a declaration backdoor and sinister attempts are made in certain provinces to propagate religious beliefs and mythology of the majority through educational institutions. I have got here with me a number of text-books prescribed in the State of Uttar Pradesh for schools. I can quote paragraph after paragraph from different chapters which are contrary to the basic tenets of Islam and which propagate religious beliefs and mythology of a section of the population under the name of secularism but I cannot do this because of lack of time.

In addition to all this, history books particularly are full of misrepresentation of historical facts, written as if only with the purpose of creating hatred and illwill between different communities, particularly the Hindus and the Mussalmans.

The poison of hatred is slowly and continuously injected through school text-books in the minds of younger generation to prepare a fertile ground for communal and reactionary forces in our country.

Representations have been made repeatedly in this regard by political representative organisations and, particularly, the Deeni Talimi Council of Uttar Pradesh to local authorities, the State Government and the Central Government regarding this serious matter. But no positive steps have been taken by any of them. Ultimately, this matter was debated in the Rajya Sabha on the 9th and 10th of September, 1966 and a Committee under the chairmanship of Prof. K. G. Saiyidan, the Director of Asian Institute of Educational Planning, was set up by the Ministry of Education, Government of India, to review the text-books and to make recommendations. The Committee has presented its report two years ago in 1968. But so far, neither this report has been presented to

the Parliament nor has been made public. I cannot understand why the Education Ministry is reluctant to present this report which is ready for the last two years. I would very strongly demand that the report should immediately be placed before the Parliament so that we may have the benefit of its mature findings and recommendations in the matter to rectify basic defects in our educational system.

Now, coming to the Aligarh Muslim University, I am very much pained to point out to you and to this House that this University still continues to be governed under Ordinances since 1965. For the last five long years, it has no elected Executive Council, no elected Court and the Vice-Chancellor carries on as a dictator.

The late Prime Minister, Shri Lal Bahadur Shastri, in 1965, had promised to bring the Act as soon as possible. This Government has been promising and promising and putting off the Act for so many years. I demand that the Aligarh Muslim University Act should be introduced in the Parliament as early as possible retaining the minority character of this University.

AN HON. MEMBER : Not the name.

SHRI EBRAHIM SULAIMAN SAIT : And the name also. When so many institutes can exist in the country on the names of different Communities, why not the Aligarh Muslim University also ? It must exist because that will be the shining example of our secularism.

The continuation of the Aligarh Muslim University retaining its minority character and the name will only be a shining example of our secularism about which we carry so much of propaganda inside and outside the country.

I may remind the Education Minister that the golden jubilee of the Aligarh Muslim University is being celebrated in the month of December this year. I would demand an assurance from the Education Minister, when he replies to the debate, to give us an assurance that the Act of the Aligarh Muslim University will be presented and passed before the golden

[Shri Ebrahim Sulaiman Sait]

jubilee which will create a very healthy atmosphere. This is a democratic demand of all right thinking people, the muslim minority and the students of the Aligarh Muslim University. If this is not done, then I will be forced to conclude that all the declarations of democracy and secularism by the Government are slogans without any substance and sincerity indulged in only to dupe the poor masses of this country and nothing more.

SHRI BAL RAJ MADHOK (South Delhi) : Give Aligarh to Pakistan.

SHRI EBRAHIM SULAIMAN SAIT : We are not going to give Aligarh to Pakistan. Aligarh will remain here. Muslims belong to this country ; Aligarh belongs to this country.

श्री राम सेवक यादव (अलीगढ़) : युनिवर्सिटी और बनारस युनिवर्सिटी इन दोनों के साथ यह मुस्लिम और हिन्दू शब्द जो कि साम्प्रदायिकता के चोतक हैं वह हट जाने चाहिये। जिन्होंने यह कहा कि साम्प्रदायिकता के चोतक यह नाम उनमें से चले जाने चाहिये वह अलीगढ़ के लिये ही नहीं अपितु सबके लिये कहा है और इस लिये नादानों में आकर इसमें व्यर्थ में गरमी पैदा नहीं करनी चाहिये।

श्री सु० अ० झाँ : उच्च बैठने वाले माननीय सदस्य कम्युनल बात पैदा करते हैं और वह अपने रिमार्क्स वापिस लें। यह लोकसभा का मंच है जहाँ हर एक को अपनी बात कहने का अख्तियार है लेकिन वह कम्युनल बात यहाँ उन्हें पैदा नहीं करनी चाहिये अलबत्ता पब्लिक प्लेटफार्म पर जो कुछ उन्हें कहना हो वह कह सकते हैं। (अव्यवधान) It should be expunged from the proceedings.

SHRI BAL RAJ MADHOK : These people must know I was just joking. But they took it seriously. I mean, the darkness in their minds bursts out any time. You talk of a minority still. You are not a minority here. You are a

part of the Indian society. If you are a minority, you get away from here.

SHRI M. A. KHAN : This cannot be a joke.

SHRI ONKARLAL BOHRA : You cannot take it as a joke. (Interruptions)

DR. V. K. R. V. RAO : May I request the distinguished Member of the Jana Sangh to withdraw that remark ?

SHRI BAL RAJ MADHOK : It was not a remark. It might not have been taken down even. This betrays their guilty conscience.

समापति महोदय : कोई आदमी इस तरह का रिमार्क न करे दूसरी कम्युनिटी के बारे में।

श्री रामावतार शास्त्री (पटना) : हम लोग पार्लियामेंट के मेम्बर हैं और सब हिन्दुस्तानी हैं।

श्री इब्राहीम सुलेमान सेट : दोनों आंखें हैं इस मुल्क की।

Sir, now coming to the problem of Urdu I need not point out in detail that it has also been suffering glaring neglect and has not been given the right which has been assured under the Constitution as a national language by the Government and by the Education Ministry, as well.

Urdu is basically an Indian language and the mother tongue of more than 80 million Hindus, Sikhs and Muslims. Memorandum after memorandum have been presented by the members of Parliament, scholars and the public with millions of signatures for the last 20 years to the President, the Prime Minister demanding justice for Urdu and supporting its legitimate rights.

Sir, I just want to say one thing more and I will finish. It is high time that Urdu is accepted under Art. 347 of the Constitution as the regional language of Delhi, U. P., Bihar, Haryana, Punjab, Madhya Pradesh and Rajasthan

and should be legally enforced. By this the children whose mother tongue is Urdu will get the right to have education in their language. Also the people will have the right to use Urdu for official purposes. This will be conceding of a democratic right of Urdu and will be in the interest of the country in building a healthy and enlightened society. Sir, I thank you for the opportunity you have given me to speak and I hope that the Education Minister will give full consideration to all the points raised by me.

**श्री ओंकार लाल बोहरा (चित्तौड़गढ़) :**

सभापति महोदय, मैं आपका बड़ा शुक्रगुजार हूँ कि आप ने मुझे बोलने का मौका दिया और मैं शिक्षा मंत्री डा० वी० के० आर० वी० राव को भी घन्यवाद देना चाहता हूँ कि उन्होंने बोलने वालों की सूची में मेरा नाम दाखिल कराने की प्रेरणा दी।

मैं आप के सामने इस मंत्रालय के बारे में चन्द शब्द कहना चाहता हूँ। आज इस पार्लियामेंट में बैठ कर हम जितनी भी मांगों पर विचार करते हैं, मैं समझता हूँ कि उन सब में महत्वपूर्ण विषय शिक्षा मंत्रालय की मांगों का है। कारण यह है कि अगर देश को लाभ पहुंचाना है तो वह नदी नाले या नहरों के निर्माण से नहीं बल्कि व्यक्तित्व के निर्माण से, चरित्र के निर्माण से पहुंच सकता है। इसलिये मैं कहना चाहता हूँ कि हम जितना समय सिचाई की मांगों पर, उद्योग की मांगों पर या अन्य मांगों पर खर्च करते हैं उस से अधिक इस मांग पर खर्च करना चाहिये। आज जो देश की बुनियादी समस्या है वह है कि हम शिक्षा की दृष्टि से, चरित्र निर्माण की दृष्टि से अपने देश के नौनिहालों को क्या भविष्य देना चाहते हैं, उनकी क्या तस्वीर बनाना चाहते हैं। यदि हम को यह मेन मैटीरियल प्राप्त हो जाये तो हम बहुत सुन्दर रूप देश के भविष्य को दे सकते हैं। लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि पिछले 20-22 वर्षों में शिक्षा के विकास की दृष्टि से, विस्तार की दृष्टि से हमने कोशिश

की, लेकिन हमारे शिक्षा मंत्रालय को यह देखना चाहिये कि उसको ऐसे नौजवान नागरिकों का निर्माण करना है, जिनका हमारे देश के नव-निर्माण में और देश को सुन्दर बनाने में उपयोग हो सके।

मैं आप से कहना चाहता हूँ कि हमारी शिक्षा इसमें पूरी तरह से असफल रही है और यही कारण है कि हमारे देश में सर्वत्र, शासन में, प्रशासन में और उद्योगों में योग्य और चरित्रवान तथा उन्नत नागरिक नहीं हैं, उन्नत और प्रतिभाशाली युवकों का अभाव है। आजादी आने के पहले जो स्थिति थी उसकी बात अलग है लेकिन मैं समझता हूँ कि हमारी शिक्षा नीति आजादी के बाद बिल्कुल असफल रही है। हमने हजारों स्कूल खोले, कई विश्वविद्यालय खोल दिये, हमने शिक्षा को फैलाने में भी प्रगति कर ली, लेकिन इन आंकड़ों से सचमुच देश की प्रगति नहीं मानी जा सकती। इस लिये मैं इस बात में नहीं जाना चाहता कि हमने कितने प्राथमिक स्कूल खोल दिये, कितने विश्वविद्यालय खोल दिये, कितने इंजीनियर बनाये, हमको देखना चाहिये कि उनका निर्माण करके हमने अपने देश की दौलत को कितना बढ़ाया, देश का चरित्र कितना बढ़ाया और देश की बुनियादी समस्याओं को हल करने में उन्होंने कितना भाग लिया। इस लिये हम को और हमारे शिक्षा मंत्रालय को इस बेसिक नीति पर विचार करना चाहिये कि आज हमारे विश्वविद्यालयों में क्यों असन्तोष का माहौल है। आज हमारे विद्यालयों में छोटे स्तर पर विद्यार्थी हड़ताल करने लग जाते हैं। यह स्टूडेंट अनरेस्ट कोई मामूली बात नहीं है। आज देश की स्थिति क्या है? हमारे देश के कालेजों के जो विद्यार्थी हैं, जो विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी हैं वे अपने प्रोफेसरों का सम्मान नहीं करते हैं। यह क्यों? कहीं न कहीं कोई बुनियादी कमजोरी जरूर है। मैं कहना चाहता हूँ कि विश्वविद्यालयों के

[श्री ओंकार लाल बोहरा]

केवल विद्यार्थी ही इसके लिये उत्तरदायी नहीं है। विश्वविद्यालयों के पुराने अध्यापक, पुराने डीन, पुराने वाइस चांसलर, वे भी इस बात को नहीं समझते हैं कि देश के मनोदशा क्या है, युवकों की आकांक्षाएं क्या हैं, युवक किधर बढ़ना चाहते हैं। इसलिये मैं चाहता हूँ कि नए सिरे से इस सबकी जांच और इस सबके बारे में सिफारिश करने के लिये एक आयोग स्थापित किया जाए जो देश में विद्यार्थियों में जो आक्रोश है, जो रोष है, दर-दर और गली-गली जो वे भटकते फिर रहे हैं, उस सबके बारे में सिफारिशें दें।

हमारी शिक्षा का रोजगार से कोई सम्बन्ध नहीं है। विश्वविद्यालय खोले जा रहे हैं, कालेज खोले जा रहे हैं और वहां से छात्र निकल रहे हैं और बेरोजगारों की संख्या को बढ़ा रहे हैं। मैं चाहता हूँ कि शिक्षा मंत्री महोदय इसको देखें कि जो छात्र निकलें उनको रोजगार की गारंटी हो। वह लेबर डिपार्टमेंट से, उद्योग डिपार्टमेंट से, सबसे यह पूछें कि उनके यहां कितने स्थान रिक्त होंगे, कितने डिग्रीधारी नवयुवकों को वे खपा सकेंगे, और उसी हिसाब से विश्वविद्यालयों और कालेजों में छात्रों की संख्या को बढ़ायें। जो प्रतिभाशाली नौजवान निकलेंगे, उनके वास्ते आपके पास क्या काम देने को है इसका आप को पहले से पता होना चाहिए। उनको खपाने का पहले से आप को इंतजाम करना चाहिये।

हम कालेज खोलते जा रहे हैं, उनकी संख्या को बढ़ाते जा रहे हैं, विश्वविद्यालय खोलते जा रहे हैं। इसकी तरफ हमारा ध्यान नहीं है कि क्या वास्तव में उनकी जरूरत है। केवल राजनीतिक लाभ के लिए, केवल वोट प्राप्त करने के लिए, केवल चुनावों में सफलता हासिल करने के लिए स्कूल और कालेज खोल दिये जाते हैं। लेकिन उनका हम ठीक तरह से इंतजाम नहीं

कर पाते हैं। वहां साधन सुविधाएं उपलब्ध नहीं कर पाते हैं। डा० राव देश के माने हुए शिक्षा शास्त्रो हैं और मैं चाहता हूँ कि वह देखें कि जब तक पूरी साधन सुविधायें न हों, तब तक शिक्षा के क्षेत्र में इस तरह पैसा पानी की तरह बहाना ठीक नहीं है। करोड़ों रुपया इस तरह से बेकार पानी में बहाया जा रहा है।

देश में सैकड़ों स्कूल हैं खास तौर पर गैर-सरकारी स्कूल जिन की दशा बहुत ही दयनीय है। मैं बहुत जोरों से कहूंगा कि इस देश में शिक्षा का राष्ट्रीयकरण होना चाहिए। शिक्षा किसी व्यक्ति विशेष, दल विशेष, जाति विशेष के हाथ में नहीं रहनी चाहिए। उनके हाथ में शिक्षा का विषय नहीं रहना चाहिए। शिक्षा को संविधान में एक महत्वपूर्ण विषय माना गया है। संविधान में कहा गया है कि देश के प्रत्येक नागरिक को समान रूप से शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिलेगा, शिक्षण की व्यवस्था होगी धनी का लड़का पब्लिक स्कूल में पढ़े और गरीब का लड़का साधारण स्कूल में पढ़े, इसको बर्दाश्त नहीं किया जा सकता है। अब समय आ गया है जबकि इन पब्लिक स्कूलों को और ऐसी प्राइवेट संस्थाओं का राष्ट्रीयकरण किया जाये और देश में एक ऐसी व्यवस्था कायम की जाए जिसमें गरीब का बच्चा और धनी का बच्चा भी एक ही स्थान पर शिक्षा प्राप्त कर सके। कम से कम शिक्षा के क्षेत्र में तो भेदभाव की दृष्टि नहीं दिखाई जानी चाहिए। पब्लिक स्कूल रख कर हम एक नई क्लास, एक नई श्रेणी की सृष्टि कर रहे हैं। शिक्षा आयोग ने भी कुछ सिफारिशें इस विषय में की हैं। मैं चाहता हूँ कि उनको लागू किया जाये।

शिक्षा, शिक्षक और शिक्षित इन तीनों में शिक्षक का चरित्रवान होना बहुत जरूरी है। शिक्षक को समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त होना चाहिए। उसकी साधन सुविधायें बढ़नी चाहिये।

उसका वेतन बढ़ना चाहिये। उसका सम्मान बढ़ना चाहिये। दुर्भाग्य यह है कि हमारे देश में आज शिक्षक का वह सम्मान नहीं है जो पहले हुआ करता था। मैं मानता हूँ कि शिक्षक ने भी अपना सम्मान खोया है। लेकिन हमने शिक्षक को सम्मान नहीं दिया है। मैं चाहता हूँ कि कोठारी आयोग ने जो शिक्षकों के सम्बन्ध में सिफारिशों की हैं, उनके वेतनों तथा अन्य सुविधाओं के बारे में जो सिफारिशों की हैं, उनको लागू किया जाए। प्रान्तों में भी इनको लागू किया जाए। अगर केन्द्र इसको पूरा सहयोग न दे सके तो कम से कम राज्यों के शिक्षा मंत्रियों को बुलाकर इस मामले पर उन से गम्भीरता से तो विचार किया ही जा सकता है, उनको इन सिफारिशों को लागू करने के बारे में कहा जा सकता है, उन पर प्रभाव डाला जा सकता है।

राजस्थान में मूर्तियों की चोरियां हो रही हैं। मूर्तियां देश की सांस्कृतिक धरोहर के रूप में हैं। मंदिरों से निरन्तर मूर्तियां चोरी जा रही हैं। इनको विदेशों को भेजा जा रहा है। मैं बहुत ही दुःख भरे स्वर में कहना चाहता हूँ कि आखिर यह देश की जो सांस्कृतिक धरोहर है, ये जो प्राचीन मूर्तियां हैं, इनका मंदिरों से चोरी जाना बहुत ही रोष और क्षोभ की बात है। इन मूर्तियों को चुराने वालों का एक गिरोह है जो हजारों लाखों रुपया मुनाफा कमा कर इनको बाहर भेजता है और मंदिरों आदि से इनकी चोरियां करवाता है। यह एक राष्ट्रीय अपराध है। इस अपराध के लिए कड़ी से कड़ी सजा की व्यवस्था होनी चाहिये। राजस्थान में पिछले कुछ वर्षों में कितनी ही बार निरन्तर मूर्तियां चोरी गई हैं लेकिन किसी को कोई सजा नहीं मिली है और न ही कोई पकड़ा जा

सका है। मैं चाहता हूँ कि इस ओर आपका ध्यान जाये।

अन्य प्रदेशों की तरह राजस्थान भी पुरातत्व की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण प्रदेश है। चित्तौड़, हल्दीघाटी, आयड़, नागदा, मोती-भगरी आदि कितने ही स्थान हैं जहां पर पुरातत्व की दृष्टि से खोजबीन करने की जरूरत है। राजस्थान पुरातत्व और पौराणिक दृष्टि से बहुत ही अधिक महत्वपूर्ण प्रदेश है और वहां पैसा अगर खर्च किया जाये और खोजबीन कराई जाये तो पुरातत्व की दृष्टि से अपनी प्राचीन संस्कृति का एक नया नक्शा हम प्राप्त कर सकते हैं। मैं चाहता हूँ कि इस ओर भी मंत्रालय को पूरा ध्यान देना चाहिए।

युवा सेवाओं का भी कोई नक्शा अभी हमारे सामने नहीं है। हो सकता है कि युवा सेवाओं के बारे में मंत्री महोदय एक नक्शा, एक योजना हमारे सामने रखें या अपने भाषण में रखें जिससे युवा जन जो विद्यार्थी वर्ग नहीं हैं और जो बड़ा फ्रस्ट्रेटिड है, बड़ा परेशान है, उसकी यह परेशानी दूर हो। उसकी जिम्मेदारी भी आपके ऊपर है। उसके लिए कोई क्रांतिकारी कार्यक्रम पेश होना चाहिए।

**श्री जनेश्वर मिश्र (फूलपुर) :** सभापति महोदय, अपनी बात शुरू करने से पहले...

**श्री राम सेवक यादव :** सभापति महोदय, कोरम नहीं है।

MR. CHAIRMAN : There is no quorum. The House stands adjourned. Shri Misra will continue tomorrow.

19.02 hrs.

The Lok Sabha then adjourned till Eleven of the Clock on Wednesday, April 22, 1970|Vaisakha 2, 1892 (Saka).